मानव मन्दिर

1/90

FORM 1
(See Rule 8)

Place of publication	Hoshiarpur
Date of publication	10th of every month
Periodicity of publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir Hoshiarpur
Editor's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir or partners or shareholders, holding more than one percent of the total	Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated: 10.[illegible]

Signature of Publisher

Printed and published by Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur for Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

...न्दिर में अगला मासिक सत्संग 2[illegible]-1-90 ...गा।

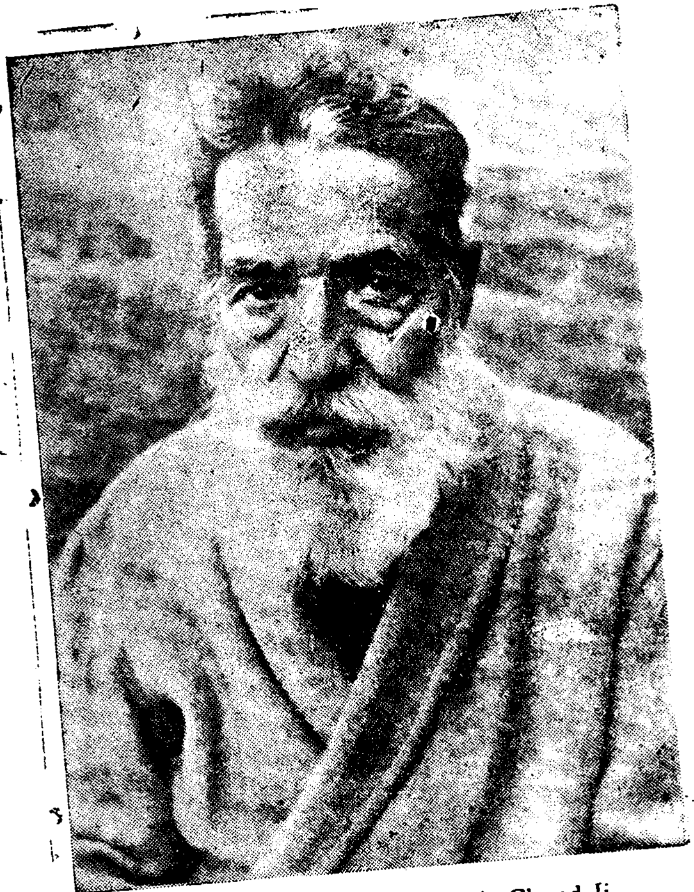

Param Sant Param Dayal Pt. Faqir Chand Ji
Maharaj

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

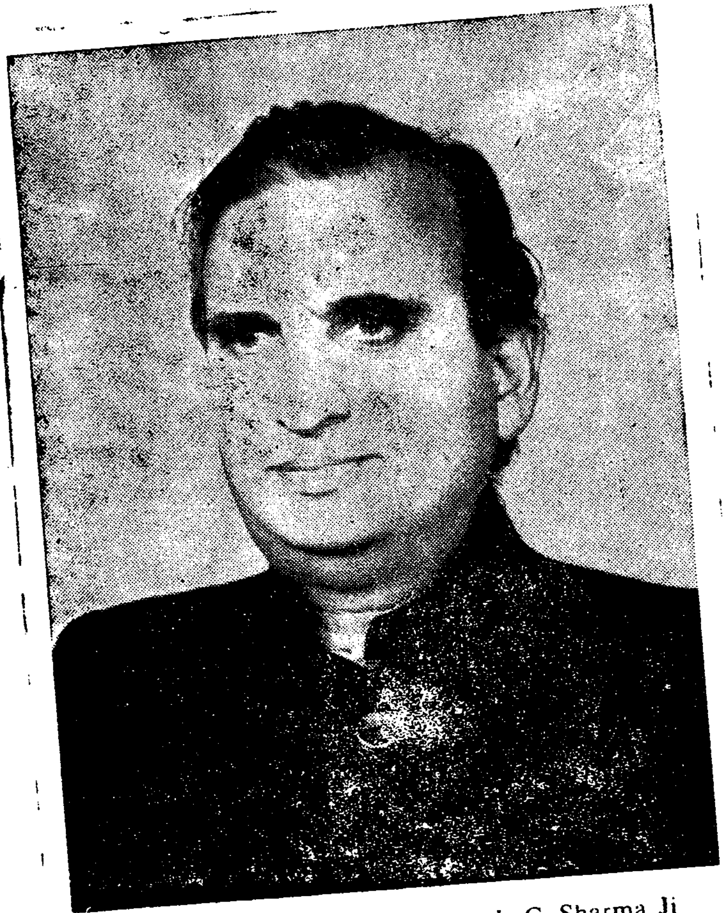

Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक—

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की सेवा में संलग्न मासिक पत्र।

BE MAN

मनुष्य बनो

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 16	बुधवार, 10 जनवरी 1990	संख्या 9

परिश्रम की शुद्ध कमाई

दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल जी महाराज

परमार्थ कमाने के लिए सबसे पहिली बात यह है कि मनुष्य की कमाई गाढ़े पसीने की और शुद्ध हो। जो हराम की रोटी खाता है, उसको कोई अधिकार नहीं कि वह परमार्थ की राह पर आये। जो परिश्रम के साथ, उचित रीति से धन कमाया जाय, वह तो शुद्ध कमाई है। परन्तु जो धन किसीको सताकर प्राप्त किया जाय, या जिसको प्राप्त करने के लिए हमने परिश्रम ही नहीं किया या जिस धन को लेने का हमें अधिकार ही नहीं है, वह कमाई हराम की है। अनुचित रीति से परिश्रम करके भी, जो कमाई की जाय, वह भी हराम की कमाई है।

सारी बात मन की पवित्रता पर निर्भर है। जिसका मन पवित्र है, उसके विचार भी पवित्र होंगे। विचार की शुद्धता, पवित्रता और निर्मलता से चित्त में एकाग्रता आती है। चित्त की एकाग्रता आने से आपको अपने अन्दर आत्मा का प्रकाश दिखाई देगा और साक्षात्कार का अवसर मिलेगा। यदि मन अपवित्र है, तो वह व्यक्ति मूढ़ होगा। मूढ़ता में आलस्य और सुस्ती है। यही आलस्य मन को महास्थूल बना रखता है। यदि इस दर्जे से कुछ बढ़ गया, तो फिर मन चंचल ही रहेगा। चंचल मन में भ्रान्ति और नाना प्रकार के सन्देह उत्पन्न होंगे, जो भ्रम और पाप के रूप में काम करेंगे। भ्रम और भ्रान्ति के रहते हुए चित्त एकाग्र हो

हो नहीं सकता और चित्त के एकाग्र न होने के कारण साधन और अभ्यास में पूरा उतरना असम्भव है। लोग ध्यान में बैठते हैं, परन्तु मन एकाग्र नहीं होता। वह अन्दर ही अन्दर उत्पात मचाता रहता है। कभी प्रकाश पर चढ़ता है, तो कभी पाताल में गिर जाता है। उसकी प्रवृत्तियाँ झील की लहरों के सदृश होती हैं। वह जम कर बैठ या किसी विशेष विचार पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ नहीं हो सकता।

मन के परमाणु भोजन से बनते हैं। इसलिये इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि जो आहार खाया जाय, वह शुद्ध और पवित्र हो। आहार जितना ही पवित्र होगा, उतना ही मन पवित्र बनेगा और आत्म-ज्ञान की प्राप्ति में उतना ही सहायक भी होगा।

आहार के विषय में कई बातें ध्यान देने योग्य हैं—

1) आहार कभी भी किसीको दुःखी करके न प्राप्त किया जाय, क्योंकि ऐसा करने से उस दुःखी व्यक्ति के दुःख के संस्कार मिले रहेंगे, जो मन को अपवित्र करेंगे।

2) यदि बिना सताये हुए भी आहार जो हाथ में आये, तब भी यह सोचना चाहिए कि हमको उसको लेने का अधिकार भी है कि नहीं।

3) इस बात का विचार करना कि वह भोजन या आहार किसी ऐसे व्यक्ति के यहाँ से तो नहीं आया, जो हमसे अपने स्वार्थ के लिए कोई काम निकलवाना चाहता है।

4) आहार जिसके यहाँ से आया है, वह मनुष्य कैसा है। उसकी कमाई उचित तरीके से कमाई हुई है या अनुचित तरीके से। वह शुद्ध है या अशुद्ध।

5) भोजन, चाहे वह किसी अच्छे मनुष्य के द्वारा ही क्यों न दिया गया [illegible] हमने स्वयं उसके लिए कुछ

परिश्रम किया कि नहीं ? अच्छे मनुष्यों के यहाँ के भोजन का लाभ बहुतों ने वर्णन किया है, परन्तु वह भी सन्देह-रहित नहीं है, इसलिये इससे बचने में ही कल्याण है। परमार्थ में गुरु के अतिरिक्त और किसीसे किसी प्रकार की सहायता लेना अधर्म है।

भिक्षा मांगना भी वैसा ही निषिद्ध है जैसा कि घूंस लेना। क्योंकि भिक्षा में भिक्षा देने वालों के संस्कार रहते हैं। दूसरी बात यह है कि जिससे जो वस्तु लोगे, उसके लिए अवश्य ही कृतज्ञ होना पड़ेगा। इससे तुम्हारा सिर सदैव नीचा रहेगा। मांगना बुरा है, चाहे कभी भी हो और किसी से भी हो। यदि कोई साधु भी किसी से मांग कर अपना पेट भरता है. तो यह सम्भव है ही नहीं कि वह पवित्र रह सके। यही कारण है कि सच्चे साधु किसीसे भी दान नहीं लेते और कोई न कोई काम करके अपना पेट भरते हैं। भारतवर्ष में आजकल साधुओं की भरमार है, परन्तु इनमें से कोई बिरला ही सच्चा साधु निकलेगा। कबीर साहिब की वाणी है :—

1) मांगन मरण समान है, मत कोई मांगे भीख।
मांगन सों मरनो भलो, यह सतगुरु की सीख ॥

2) मर जाऊँ मांगूं नहीं, अपने तन के काज।
परमार्थ के कारनै, मोहि न आवै लाज ॥

3) मांगन भलो न बाप सों, जो विधि राखे टेक।
मांगनहारा पातकी, सदा लजावै भेख ॥

4) मांगन गये सो मर गये, मरे जो मांगन जाहिं।
उनसे पहिले वह मरे, जो होत कहत हैं नाहिं ॥

परिश्रम की कमाई में बहुत बरकत होती है। जिस कमाई में आपका परिश्रम नहीं होता, उसमें बरकत नहीं

होती। हमने कई बार आजमाकर देखा है। बिरादरी के सम्बन्ध में जब भी किसी के यहाँ हमें खाना पड़ता है, उस समय हमने देखा है कि खाने के बाद हमारा मन चंचल हो जाता है और प्रायश्चित्त करने को जी करता है। इसलिये हम बार-बार आपको यही कहते हैं कि चाहे दुःख उठाओ, किन्तु कभी भी किसीके आगे हाथ न फैलाओ। जब हमें हाथ, पाँव, बुद्धि तथा विचार मिले हुए हैं तो हम क्यों किसीके आधीन रहें, क्यों न कोई काम करके, हम अपना पेट भी भरें और दूसरों को भी खिलायें। दूसरों से सहायता की आशा रखी ही क्यों जाय ?

अन्न का शरीर और मन पर क्या प्रभाव पड़ता है इस बात को हम आपको भीष्म पितामह का एक दृष्टान्त देकर समझायेंगे।

भीष्म पितामह महाभारत के युद्ध में घायल होकर, वाणशैय्या पर पड़े हुए थे। पाँचों पाण्डव भगवान् कृष्ण के साथ उनके दर्शन करने के लिए आये। उनके साथ द्रौपदी भी थी। युधिष्ठिर भीष्म पितामह से धर्मसम्बन्धी कुछ प्रश्न पूछने लगे, जिनके उत्तर महाभारत के 'शान्तिपर्व' में विस्तारपूर्वक लिखे हुए हैं। द्रौपदी ने राजर्षि भीष्म पितामह से प्रश्न किया, "महाराज! इस समय तो आप धर्म के विषय में इतनी बातें कर रहे हैं। मैं पूछती हूँ कि उस समय आपका धर्म कहाँ चला गया था, जब भरी सभा में दुष्ट दुःशासन ने मेरी चीर पकड़ कर खींची और मुझे नंगी करने लगा था। क्षत्रियों का धर्म तो यह है कि वह ऐसी दशा में स्त्रियों की रक्षा करें, परन्तु वहाँ सब क्षत्रिय इतने बड़े अत्याचार को चुपचाप देखते रहे। पाण्डव तो जुए में हार गये थे, इसलिये वह बोल नहीं सकते थे, परन्तु

मैं पूछती हूँ कि आपको क्या हो गया था, जो आपने इस अत्याचार का विरोध नहीं किया इस अधर्म की रोक-थाम नहीं की ?"

भीष्म पितामह ने उत्तर दिया, "ऐ मेटी बेटी ! मैं उस समय दुर्योधन का अन्न खाता था। 'जैसा अन्न वैसा मन'। उस अन्न के प्रभाव ने मेरे धर्म-संस्कारों को दबा दिया था और मैं बेबस था। जो जिसका अन्न खाता है, वह उसके आधीन रहता है वह वैसा ही करेगा जैसा कि अन्न देने वाला करता है।"

एक और दृष्टान्त मैं (इस संदर्भ में) स्वामी रामानन्द जो कबीर साहिब के गुरु थे उनके विषय में देना चाहूंगा।

श्री रामानन्द जी परमसन्त कबीर के गुरु थे। वह एक दिन जब ध्यान में बैठे, तो चित्त एकाग्र ही नहीं हो पा रहा था, ध्यान जम नहीं सका, उठ खड़े हुए और चेले से पूछा, "आज भिक्षा कहाँ से लाये थे ? चेला बोला, "महाराज ! आज तो भिक्षा एक चमार के घर से आई है।" रामानन्द जी क्रोध में आ गये और अपने प्रिय शिष्य को शाप दे दिया, "जा तू भी चमार हो जा।" कहते हैं कि वह चेला दूसरे जन्म में भक्त रैदास चमार हुआ। यह बात सच है या झूठ इसका प्रमाण नहीं है। परन्तु कहने का मतलब यह है कि बुरे अन्न का प्रभाव न ही केवल साधारण लोगों पर, अपितु महात्माओं पर भी पड़ता है। इस विषय में मैं आपको एक और उदाहरण देकर स्पष्ट करूंगा :—

दो ब्राह्मण नवयुवक थे, जिनका बाप उनके लिए दो सौ रुपये छोड़कर मर गया। दोनों को सौ-२ रुपये जो कि उनके हिस्से में आये थे मिल गये। इनमें से एक लड़का सज्जन तथा धर्मात्मा था, परन्तु दूसरा धूर्त। सज्जन लड़के

ने तो आटा, दाल, नमक, लकड़ी आदि की दुकान खोल ली, जिसमें उसे केवल चार आने रोज़ बच जाते थे। धूर्त लड़का अपने हिस्से के सौ रुपये उड़ा कर खाली हो गया और कुछ ही दिनों के बाद अपने धर्मात्मा भाई के पास मदद के लिए पहुँचा। भाई ने पूछा, "पिता जी के सौ रुपये का तुमने क्या किया?" उसने जवाब दिया "बस यूं ही खर्च कर दिये। अब तो भूखा मर रहा हूँ तुम मदद नहीं करोगे तो बस कुछ ही दिनों में मर जाऊंगा।" भाई के मन में दया उमड़ आई उसने धूर्त भाई को एक रुपया देकर कहा, "जा ले जा यह एक रुपया इससे तुम दूध की दुकान खोलो। तू अकेला है तेरे गुज़ारे लायक पैसे तो बच ही जायेंगे। परन्तु बुरी संगत और बेईमानी से बच कर रहना।"

उस धूर्त भाई ने सज्जन भाई के सामने ही दूध की एक छोटी सी दुकान खोल ली और दूध बेचने लगा। पहिले दिन उसे एक ही आने की बचत हुई। उसने सोचा कि एक आने से तो क्या होगा। दूसरे दिन वह एक रुपये का दूध खरीद कर लाया और उसमें एक लोटा पानी का मिला दिया। उस दिन उसे एक की जगह दो आने की बचत हुई। तीसरे दिन वह दो रुपये का दूध लाया और उसमें चार लोटे पानी मिला दिया और उस दिन उसे आठ आने की बचत हुई। अब तो बस उसे मानो कमाने का ढंग आ गया। थोड़े ही दिन में दुकान खूब चलने लगी। धर्मात्मा भाई यह सब देख कर धूर्त भाई को बहुत समझाता कि वह इस प्रकार की मिलावट बन्द कर दे, नहीं तो उसको इसका फल भुगतना पड़ेगा। परन्तु वह धूर्त कब मानने वाला था। वह तो अपने धर्मात्मा भाई को काठ का उल्लू समझता था क्योंकि वह केवल चार आने प्रतिदिन की आमदन पर ही

सन्तुष्ट था।

एक दिन धर्मात्मा भाई अपने गुरु के पास गया और बोला, "गुरु जी ! मेरा भाई अधर्म करता है, दूध में पानी मिलाता है, फिर भी उसकी दिनोंदिन तरक्की हो रही है। मैं धर्म पर चलता हूँ, धोखाधड़ी नहीं करता, मेरी तो उन्नति ही नहीं होती।" गुरु ने उत्तर दिया, "तुम ईमानदारी के कारण ग़रीब नहीं हो, बल्कि अपनी मूर्खता के कारण उन्नति नहीं कर रहे। तुम्हें चार आने रोज़ की कमाई में सन्तोष है, इसलिये तुम अधिक पैसा कमाने की कोशिश भी नहीं करते। यदि ईमानदारी के साथ-२ तुम बुद्धि का भी प्रयोग करो और परिश्रम करो, तो तेरी दुकान देखते-देखते चमक जायेगी। तुम्हारे भाई की जो उन्नति हो रही है, वह उसके अधर्म के कारण नहीं हो रही, किन्तु उसके पिछले जन्मों के शुभ कर्मों का उदय हुआ है। जब शुभ कर्मों का लेखा-जोखा हो जायेगा और बुरे कर्मों का उदय होगा, तो उसका सारा माल-असबाब जल कर राख हो जायेगा। तेरे काम में सच्चाई है, परन्तु तेरे भाई के काम में सच्चाई नहीं है, इससे उसका नाश अवश्य होगा। इस समय तो वह ऐश कर रहा है, परन्तु कागज़ की यह नाव कब तक चलेगी ? अन्त भले का भला और बुरे का बुरा होता है। अच्छा, यह तो बताओ कि आज तक तुम्हारे भाई ने दूध में कितने लोटे पानी के मिलाये हैं ?"

उस धर्मात्मा भाई को कुछ अन्दाज था, इसलिए वह बोला, "इतने" यह सुनकर साधु ने उसी समय मनुष्य के कद के बराबर एक खड्डा खुदवाया और उसमें उतने ही लोटे पानी डलवाये जितने कि धर्मात्मा भाई ने बतलाये

थे। फिर हिसाब लगा कर बताया कि जब इतने लोटे पानी और पड़ जायेंगे तब उस तुम्हारे धूर्त भाई पर ज़बरदस्त आपत्ति आयेगी।"

ब्राह्मण यह बात सुनकर अपने घर चला गया और अपनी दुकान पर बैठा हुआ, नित्य लोटे गिनता रहता। जिस दिन लोटों की गिनती पूरी हुई उसने सोचा, "आज मेरे भाई पर आपत्ति ज़रूर आयेगी, क्योंकि साधु झूठ नहीं बोलते।"

उस दिन वह धूर्त भाई दूध, दही तथा रबड़ी बेचता रहा। रात को नित्य की भाँति उसने आग बुझाई और अपने सोने का कण्ठा दुकान में ही छोड़ कर सोने चला गया। संयोगवश बुझी हुई लकड़ियों में से किसी लकड़ी में थोड़ी आग रह गई थी, उससे धीरे-२ आग सुलगने लगी। अन्त में सारी दुकान में आग लग गई। सारा माल-असबाब जल कर राख हो गया। वह रोता रहा, रोता ही रहा अपने सर्वनाश पर।

भाई ने दिलासा देकर धैर्य बन्धाया और समझाया, "देख भाई! मैं तुम्हें समझाता रहा कि बुराई का परिणाम बुरा ही होता है। आग ने तेरा सारा माल-असबाब जला कर राख कर दिया। कुछ भी बाक़ी नहीं बचा। परन्तु अब भी तेरी कमर में केवल वही रुपया बन्धा है, जो मैंने तुम्हें बड़े प्रेम से दिया था। ऐ मेरे प्यारे भाई! अब फिर इसी रुपये से ईमानदारी, सच्चाई और परिश्रम से काम शुरू करो तेरा काम फिर चल जायेगा।"

भाई की बातों से धूर्त भाई की आँखें खुल गईं। थोड़े ही दिनों में वह फिर सम्भल गया और उसकी दुकान चल निकली।

बहुत से कर्म, बिना भोगे हुए नहीं कटते, परन्तु इन धोखा देने वालों की दशा को देखकर समझ गया कि इसका परिणाम बुरा है :—

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजे, और ठगे दु:ख होय॥

हमने ऐसे घूँसखोरों को देखा है, जिन्होंने खूब माल मारे, खूब ऐश किये, परन्तु बाद में वे जीवनभर नाना प्रकार के दु:ख भोगते रहे। कहीं बीमारी में हजारों रुपये उड़ गये, तो कहीं अपनी उन्नति का अवसर खो दिया। जिस कारोबार में उन्हें लाभ ही लाभ की आशा थी, उसी में उनका दिवाला तक निकल गया और उन्हें अन्त में हाथ मलते हुए संसार से विदा होना पड़ा। मनुष्य को चाहिए कि वह परिश्रम तथा सच्चाई के साथ, गाढ़े पसीने की कमाई खाये। उसका परिणाम अच्छा ही होगा। दु:ख और कष्ट तो सभी पर आते हैं। अवतार, देवता, नबी, रसूल सभी को दु:ख उठाना पड़ता है। परन्तु दु:ख में धैर्य और साहस को छोड़ना नहीं चाहिए और न ही कभी हराम की कमाई करनी चाहिए। दु:ख तो मनुष्य की परीक्षा तथा उसकी भलाई के लिए आते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह इस परीक्षा में पूरा उतरने के लिए सदा तैयार रहे।

मालिक पर सदा भरोसा रखो, वह जो करेगा भला ही करेगा। अपना बिगाड़ने वाला मनुष्य आप ही होता है। मालिक तो किसी को नहीं बिगाड़ता।

सेवक सेवा में रहै, अन्त कहूँ नहिं जाय।
दु:ख सुख सर ऊपर सहै, कहैं कबीर समझाय॥

सौ वर्ष की इबादत से ढाई घड़ी का सत्संग उत्तम

परमसन्त परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज का 6 फरवरी 1969 में दिया गया सत्संग होशियारपुर।

राधास्वामी !

तुम लोगों ने आज सत्संग कराने के लिए विवश किया। अब तुम स्वयं देखो कि क्या तुम लोग सत्संग के अधिकारी हो ? कितने आदमी थे, जो रात को रो-रो कर कह रहे थे "बाबा जी ! आप यहाँ से मत जाओ।" और अब देखो कितने कम आदमी मेरा सत्संग सुनने को आये हैं। मैं साफ नीयत से सत्संग कराता हूँ। परन्तु संसार इन सत्संगों का अधिकारी नहीं है। संसारी मनमत हैं। सत्संग कहते किसे हैं स्वामी जी की वाणी के आधार पर सुनो :—

सत्संग किस को कहते हैं, सो भी तुम सुन लो।
सतनाम सतपुरुष का, जहाँ कीर्तन हो ॥

स्वामी जी कहते हैं कि सद्‌गुरु वह है, जिसने सतपुरुष को जान लिया है और वह ही सद्‌गुरु सतपुरुष का कीर्तन कर सकता है सुखमनी साहिब के अनुसार यह कीर्तन सतगुरु करा सकता है। सद्‌गुरु किस सतपुरुष का कीर्तन करेगा, सुखमनी साहिब के वचन सुनो :—

सतिगुरु सिख की करे प्रतिपाल, सेवक कउ गुरु सदा दयाल।
सिख की गुरु दुरमति मल हरे, गुरु बचनी हरि नाम उचरे ।।

सद्गुरु सदा दयाल होता है। वह सदा अपने शिष्य पर दया करता है, उसे पालता है और उसको भेद बताता है। उसके अज्ञान को दूर करता है और अपने वचनों से शिष्य का हित करता है।

सतिगुरु सिख के बन्धन काटे, गुरु का सिख विकारते हाटे।

गुरु जीव के बुरे विचारों और बुराइयों, जो कि उसके दुःख का कारण बनते हैं, उनको अपने वचनों द्वारा दूर करता है और उसके अज्ञान के बन्धन को काटता है।

सद्गुरु सच वचन कहता है, जो शिष्य उसके वचनों पर चलता है, वह मालिक को प्राप्त करता है। सद्गुरु नाम है सच्चे ज्ञान का।

सेव करत होई निहकामी,
तिस कउ होत परापत सुआमी।

जो आदमी निष्काम होकर सेवा करता है, उसको स्वामी मिलता है। तुम लोग तो मतलब से आते हो। कोई बेटा माँगता है, तो कोई धन। कोई कुछ माँगता है, कोई कुछ। तुम निहकामी कैसे हुए ? तुम मंज़िल तक नहीं पहुँच सकते। तुम स्वयं ही इस पर विचार करो। यह वाणी मेरी लिखी हुई नहीं है। यह गुरुवाणी है। जो आदमी गुरु के दरबार में जा कर भी संसारी या भौतिक चीज़ों की माँग करता है, वह निहकामी नहीं है, उसे स्वामी नहीं मिल सकता।

सेवक का काम है गुरु की समझ और मत लेना। जब तक तुम्हें ज्ञान प्राप्त नहीं होगा या बात तुम्हारी समझ में नहीं आयेगी, बेशक तुम गुरु के चरण धो-२ कर जल

पीते रहो, या उसके मकान में झाड़ू देते रहो, या उसका डेरा या मन्दिर बनवाते रहो, तुमको पारमार्थिक लाभ नहीं मिल सकता। सच्चाई तो यह है, जिस पर उसकी कृपा होती है, उसे ही ज्ञान प्राप्त होता है दूसरे को नहीं।

बीस बिसवे गुरु का मन माने,
सो सेवक परमेसुर की गति जाने।

गुरु का मन क्या है ? गुरु के विचार और भाव और बीस विसवे क्या है ? इसका मतलब है कि जो शिष्य गुरु के वचनों को सुन कर, उन पर शत-प्रतिशत विश्वास करता है, उन पर चलता है उसको ही लाभ पहुँच सकता है, दूसरों को नहीं। अब तुम लोगों ने मुझे रोका, परन्तु मेरी बात नहीं मानी यानि कि मेरे वचनों पर अमल नहीं किया। क्या तुम सेवक हो ? क्या तुम गुरुमुख हो ? नहीं, हरगिज़ नहीं। तुम तो मनमत हो।

सो सतिगुरु जिस हिरदै हरि नाऊ।
अनिक भार गुरु कउ बलि जाऊ॥
सरब निधान जिअ का दाता।
आठ पहर पारब्रह्म रंगि राता॥
ब्रह्म महि जनु रउ महि पारब्रह्म॥
एकहि अपि नहीं कछु भरम।

ये सद्गुरु के गुण हैं। वह कोई बड़भागी गुरु ही होता है, जो इस अवस्था को प्राप्त होता है।

सफल दरसन पेखत पुनीत, परसत चरनगति निरमल रीत।

ऐसे गुरु के दर्शन करने और चरणस्पर्श करने से मन को शान्ति मिलती है और मन पवित्र होता है।

मेटत संगि राम गुन रवे।
पारब्रह्म की दरगह गये॥

सुनि करि बचन कान अवाने ।
मान संतोख आतम पतिआने ॥
पूरा गुरु अख्यो जा का मन्त्र ।
अमृत दृष्टि पेखे होइ सन्त ॥
गुण बिअत कीमति नहीं पाई ।
नानक जिसु भावे तिस लये मिलाई ॥
जिह्बा एक उसतति अनेक ।
सति पुरख पूरन विवेक ॥

पूर्ण विवेक है पूर्ण ज्ञान । जिस सत्संग में जीवों को पूर्ण ज्ञान दिया जाता है उसी ही सत्संग का नाम सत्संग है । मैं सत्संग कराता हूँ सच्चाई से । मेरा हृदय सच्चाईपसन्द है । मैं सदा पाखण्डजाल से बचने का यत्न करता रहता हूँ । मैं अपने आप से पूछता हूँ, "क्या तू सद्‌गुरु है ?" हाँ । मैंने जीवन में बहुत सत्संग कराये और बहुत किताबें लिखीं । संसार इनको पढ़े और फिर स्वयं सोचे कि इन किताबों में क्या जीवन व्यतीत करने का सच्चा भेद मिलता है ? मैंने जीवों को या अपने जैसे दीवानों को जीवन व्यतीत करने का सच्चा भेद बताया है । क्या बताया है ? यह कि शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन करो । अपने घरों में शान्ति रखो । घृणा, द्वेष और शत्रुता को त्यागो, मन पर काबू रखो । अपने अज्ञान को दूर करो और सुमिरन ध्यान करो । क्योंकि मैंने जीवन भर आप लोगों को समझ और विवेक दिया है । आपके भ्रम, वहम मिटाने का यत्न किया है, इसलिये मैं कहता हूँ कि मैं सद्‌गुरु हूँ । मैं सच्चाई बताता हूँ । अधिकतर धर्म और पन्थ वाले आपको सच्चाई नहीं बताते । मैं ऐसा नहीं कर सकता ।

आज प्रातः एक महिला मेरे पास आई और बोली, "बाबा जी ! आज से डेढ़ महीना पहिले आप प्रकट हुए और कहा तुम्हारा पति पाँच-छः हजार रुपया कमा कर जल्दी ही आ रहा है। आपकी बात बिल्कुल ठीक निकली।"

एक और आदमी आया और बोला, "बाबा आप प्रकट हुए और बोले—तुम फौरन घर वापिस चले जाओ तुम्हारे बच्चे बीमार हैं।" मैं घर चला गया और वहाँ अपने बच्चों को बीमार पाया।

अब मैं आपको सत्य बता रहा हूँ कि मैं कहीं नहीं जाता यदि आपके काम मेरा रूप बना जाता है, तो यह आपके ही विश्वास के कारण होता है। मैं तुमको अन्धकार में नहीं रखना चाहता, क्योंकि मैं संसार को सच्चा ज्ञान और सच्चा विवेक देने के लिए ही आया हूँ, मैं आपको यह बताने के लिए आया हूँ "ऐ मानव ! बाहर से कोई तेरे अन्तर में नहीं आता।" मैं सत्य कहता हूँ कि मैं मस्तराम जी का पुत्र फकीर चन्द न तो उस महिला के अन्दर गया और न ही उस पुरुष के अन्दर। मैं तो उनके नाम तक भी नहीं जानता। इसलिये मैं आपसे ही पूछता हूँ, "क्या आज तक आपको धर्मों और पन्थों ने अज्ञान में रख कर मूर्ख नहीं बनाया ? आँखें खोलो ! प्यारो ! मैं हूँ समय का गुरुवक्त, सन्त सद्गुरु। मैं अनामी धाम से फकीर के चोले में नीचे आया हूँ लोगों को चेताने, उन्हें सच्चाई बताने। ऐ मानव ! तुमको असलियत का पता ही नहीं। तू संसार की आशाओं में ग्रस्त होकर, इस काल और माया के चक्कर में आ कर भ्रम में पड़ा हुआ है।"

सोचो, मैं कह क्या रहा हूँ ? मैं सत्संग कराता हूँ। अपने आप से पूछता हूँ, "क्या तू सचमुच सद्गुरु है और संसार को सच्चा ज्ञान देता है ? हाँ। सद्गुरु नाम है सच्चे

ज्ञान का, विवेक का। मैंने सच्चा ज्ञान या विवेक प्राप्त कर लिया है। मैं तुम्हें वहाँ तक ले जाना चाहता हूँ या पहुँचाना चाहता हूँ, जहाँ हजूर दाता दयाल जी ने मुझे पहुँचाया। मगर तुम तो वहाँ जाना ही नहीं चाहते, ले किसको जाऊँ? भई! मैं तुमको कहाँ ले जाना चाहता हूँ, सुनो!

चौथा पद सच खण्ड कहावे। महासुन्न के पार रहावे।
महासुन्न यह सन्तन भाखी। अक्षर से वह आगे ताकी॥

हजूर दाता दयाल जी महाराज मुझे चौथे पद पर ले जाना चाहते थे, मेरे नाम जो उन्होंने शब्द लिखे हैं, उनमें चौथे पद का इशारा है। लेकिन मैं उस समय इसके योग्य नहीं था, क्योंकि मेरे अन्तर में हजूर दाता दयाल जी महाराज, हजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज या हजूर महाराज जी का रूप और कई प्रकार के और भी रंग-रूप प्रकट होते रहते थे और मैं उनको सत्य मानता था। क्योंकि मैं उन रूपों-रंगों को सत्य मानता था, इसलिये मेरी सुरत उनमें ही फँसी रहती थी और मैं आगे नहीं जा सकता था। अब आप लोगों ने मुझे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। आप लोगों की दया से मैं इस स्थान पर पहुँचा हूँ। जब आप कहते हैं कि मेरा रूप आपके अन्दर प्रकट होकर, आपकी सुरतें चढ़ा देता है, आपको दवाइयाँ बता जाता है, आपको अन्त समय ले जाने के लिए आता है, धन दे जाता है, पुत्र दे जाता है आदि-२ और मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि मैं कहीं आता हूँ न जाता हूँ, तो बात मेरी समझ में आ गई। मुझे विश्वास हो गया कि मेरे अन्तर में भी जो दाता दयाल जी महाराज का रूप प्रकट होता था वह भी मेरे अपने ही मन का बनाया हुआ था। इस बात का ज्ञान हो जाने पर मैं इस मन को छोड़ कर, असली मालिक को ढूंढने के लिए विवश हो गया

और अब मैं चौथे पद, बल्कि पांचवें पद में रहने का यत्न करता हूँ। दया तो मेरे गुरु जी महाराज की है, जिन्होंने मुझे यह खेल खिलाया।

क्योंकि इस समय के धार्मिक, पंथिक और गद्दियों के गुरु और उनके पैरोकार इस भेद से बिलकुल कोरे हैं और सतनाम और सतपुरुष का कीर्तन कोई नहीं करता, इसलिये प्रकृति ने मेरे मस्तिष्क को हिलाया, ताकि मैं इस भेद को खोल जाऊँ जिनके भाग्य में है, वह मेरी बात को समझ कर अपना जीवन क्रियात्मक बना सकते हैं और जिनके भाग्य में नहीं है उनके लिए न तो मैं कुछ कर सकता हूँ और न ही कोई और कर सकता है। जिस पर उस मालिक की दया होती है केवल वह ही इस ओर आता है, दूसरा नहीं। मेरे गुरु ने कहा था :—

तू तो आया नरदेही में धर फकीर का भेसा।
दु:खी जीव को अंग लगा कर, ले जा गुरु के देसा॥
तीन ताप से जीव दु:खी हैं, निबल, अबल, अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी॥

अब यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि मैं कैसे सबको अंग लगा कर ले जाऊँ। क्या मैं अपनी छाती से लगाऊँ? मेरी छाती तो इतनी बड़ी नहीं है। इसलिये मेरे प्यारो! मेरी वाणी को सुनो और उस पर अमल करो। जो मेरी वाणी को ध्यान से सुनेगा और उस पर अमल करेगा, वह पार हो जायेगा। जिसकी इच्छा हो मेरी किताबें पढ़े, जिसकी इच्छा न हो, न पढ़े। जिसकी इच्छा हो मेरा सत्संग सुने जिसकी इच्छा नहीं हो न सुने। मुझे न मान की आवश्यकता है, न प्रतिष्ठा की और न ही धन की। मेरे जिम्में तो सत्संग कराने का कर्तव्य

था। उसे पूरा कर रहा हूँ। सिवाय सद्‌गुरु के और कोई सत्संग नहीं कराता और सद्‌गुरु केवल वही है, जो सतनाम में रहता है और सतनाम में केवल वही रह सकता है, जिसको यह ज्ञान हो जाय कि ये जितने भी रूप-रंग अन्तर में प्रकट होते हैं, वे सब माया हैं, कल्पना हैं। मगर हम लोग तो यही समझते हैं कि बाबा सावन सिंह जी महाराज प्रकटे, स्वामी जी महाराज आ गये या बाबा फकीर आ गया या राम या कृष्ण आ गये। वास्तव में कोई भी नहीं आता।

यह सामने जोगेन्द्र सिंह बैठा हुआ है। यह मेरे पीछे दीवानों की भाँति फिरता था। यह सत्संग भी कराता था। एक स्त्री के अन्दर जोगेन्द्र सिंह का रूप प्रकट होने लगा। वह स्त्री इसके दरवाज़े पर आकर बताती कि उसने उसे यह कहा, वह कहा। जब जोगेन्द्र सिंह ने मुझे यह घटना ज्यों की त्यों बताई, तो मैंने उससे पूछा, "जोगेन्द्र सिंह! अब भी तेरी आँख खुली कि नहीं? सारी दुनिया इस चक्कर में फँसी हुई है। ऋषि, मुनि और योगी तक इस चक्कर में हैं।

जब तक कोई महासुन्न से आगे नहीं जायेगा, वह इस चक्कर से निकल ही नहीं सकता। महासुन्न क्या है? जब मन में, हर प्रकार के रंग-रूप, भाव-विचार और संकल्प का पैदा होना बन्द हो जाय, तो उसके बाद जो मन की अवस्था होती है उसका नाम ही महासुन्न है साधन करने से यह अवस्था आ जाती है। परन्तु साधन समाप्त करने के बाद फिर वही रूप-रंग प्रकट होने आरम्भ हो जाते हैं। इसलिये महासुन्न से गुरु निकालता है। कैसे? यह ज्ञान लेकर भी कि ये जितने रूप-रंग मेरे अन्तर में आते हैं, यह सब माया है, मैं महासुन्न से निकल नहीं सका था। समाधि के बाद वे रंग-रूप फिर आ जाते थे और मैं उन्हें सत्य समझता था। हुज़ूर दाता दयाल जी ने फ़रमाया था कि मुझे सद्‌गुरु

के दर्शन सत्संगियों के रूप में होंगे और उनका फ़रमाना बिलकुल सही निकला। अब मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि आप सब मन के चक्कर में ही रहते हैं। मैं सच्चाई को बयान करता हूँ, क्योंकि मैं समय का सन्त सद्गुरु हूँ और मेरा कर्त्तव्य है जीवों को सत्संग में ले जाना। लेकिन जब तक तुम्हारा मन तथा बुद्धि साफ़ नहीं होते, तुमको सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता और तुम भवसागर से पार नहीं जा सकते। आप लोग इस शिक्षा के सच्चे अधिकारी नहीं हो. क्योंकि आप तो संसार चाहते हो, पुत्र चाहते हो, धन चाहते हो। इसके लिए भी मैंने आपको बता दिया है कि एक पर ही विश्वास रखो। चाहे राम पर रखो, चाहे कृष्ण पर। जिस रूप में आपने उसे माना हुआ है, ब्रह्माण्डी मन उसी रूप में आकर आपका काम कर जायेगा। आज का उदाहरण आप लोगों के सामने है। मैं तो कहीं गया नहीं, जिनको मेरा रूप प्रकट हुआ, वे मुझे मालिके-कुल मानते थे। इसलिये ब्रह्माण्डी मन मेरा रूप धारण करके उनके काम बना गया। यदि संसार से निकलना चाहते हो, तो प्रकाश और शब्द को मानो, मगर उसके लिए पहिले ज्ञान होना बहुत ज़रूरी है।

ज्ञान प्राप्त करने के लिए उस सद्गुरु की सेवा करो, जिसने स्वयं सतपुरुष को जान लिया है। इससे तुम्हारे मन की मैल धुल जायेगी। भूपसिंह ! तुम सत्संग देने का काम करते हो। मैंने तुम दिल्ली वालों को यह खज़ाना दे रखा है। यह मेरे जीवन की गाढ़ी कमाई है। तुम्हारे पास मेरे काफ़ी सत्संग एकत्रित हैं, जो लोग अधिकारी हैं, उन्हें सुनाया करो। मेरे वचन ही आप लोगों को तार कर ले जायेंगे न कि मैं ले जाऊंगा।

'वाणी गुरु गुरु है वाणी, वाणी अमृत सारे।'

मगर तरेंगे वे, जो तरना चाहते हैं। तुम तो तरना चाहते ही नहीं। तुमको तो संसार ही चाहिए। यदि संसार या धन चाहते हो तो धन दान दिया करो। जो दोगे, वही मिलेगा। प्रेम दोगे तो प्रेम मिलेगा, घृणा दोगे तो घृणा मिलेगी, धन दोगे तो धन मिलेगा। बहुत सी स्त्रियाँ मेरे पास आती हैं और कहती हैं कि उनकी उनके पति से बनती ही नहीं। भई! जो दिया हुआ है, वही तो मिलेगा। इसलिये पति को प्रेम दो, तो प्रेम मिलेगा, मान दो तो मान मिलेगा। यह कलियुग है, जो दोगे वही मिलेगा। यदि तुम दूसरों से घृणा करोगे तो तुम्हें प्यार कहाँ से मिलेगा। जिस प्रकार, तुम दूसरों से हेराफेरी करके अपना स्वार्थ निकालने में लगे रहते हो, ऐसे ही दूसरे भी तुमसे करेंगे। मैं तुम्हें सच्ची बात बता रहा हूँ और सदा सच्चाई का ही प्रमाण देता हूँ। क्या आज तक किसी ने यह बात कही कि वह तुम्हारे अन्तर में नहीं आता। न स्वामी जी महाराज ने कहा, न हजूर दाता दयाल जी महाराज ने कहा, न हजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज ने और न ही कबीर साहिब ने। लेकिन किसी न किसी रूप में कहा सबने। मगर कहा इस ढंग से कि, जो समझ सके वे तो समझ गये और जो न समझ सके, वे नहीं समझ सके। कहा तो सबने ही है। वाणियाँ भरी पड़ी हैं। तुम्हारे अन्तर जितने भी रूप-रंग प्रकट होते हैं, तुम उनको सत्य मानते हो मगर राधास्वामी दयाल की वाणी उनको असत्य कहती है। सुनो :—

'देखो गगन के बीच, श्याम कुंज खिल रहा।
भँवरा गया लुभाय, वहीं चढ़ के मिल रहा॥

धोखे का वह मुकाम, उसे देखता रहा।
बहु सिद्ध नाथ जोगी, उन्हें पेखता रहा॥

यह स्वामी जी की वाणी है। वह कहते हैं कि अन्तर में जो सिद्ध, नाथ, जोगी प्रकट होते हैं, यह सब धोखा है। मैंने एक दिन सुना कि एक डेरे का कोई आदमी सत्संग करा रहा था और वह कहता था कि उसके अन्दर बड़े-२ महात्मा और गुरु प्रकट हुए और उसे यह कहा और वह कहा। ऐसी बातें कह-कह कर तुम लोगों को मूर्ख बना कर लूटा जा रहा है। ऊपर दी गई वाणी के अनुसार तो जो कुछ तुम्हारे अन्तर में प्रकट होता है, वह सब धोखा है। मैं कहता हूँ कि मैं किसीके अन्तर नहीं जाता और जो कुछ भी तुम्हारे अन्तर में प्रकट होता है, वह सब तम्हारे अपने ही मन का खेल है। मैंने इस भेद को खोल कर रख दिया है। इस भेद को खोला तो स्वामी जी महाराज ने भी था और कबीर साहिब ने भी। मगर इस विधि से खोला कि समझ में किसी के भी नहीं आया :—

'काल अपना जाल एक, जुदा ही बिछा रहा।
जो-२ गये वहाँ, उन्हें उलटावता रहा॥'

यदि अन्त समय पर तुम्हारे सामने कोई रंग-रूप आ जायेगा, तो तुमको दूसरा चोला अवश्य लेना पड़ेगा। तुम आवागमन से निकल नहीं सकते। यदि आज मुझे राधा-स्वामी मत की शिक्षा में कोई दोष दिखाई देता, तो मैं इसके विरुद्ध आवाज़ उठाता। हजूर महाराज ने अपनी वाणी में साफ़-२ कहा है कि मनुष्य के मरने के समय पर उसकी आँखों के आगे ज़िन्दगी की एक फ़िल्म चलती है। जिस गुरु से जिसने नाम लिया हुआ होता है, वह गुरु सामने आ जाता है और शब्द भी सुनाई देता है। फिर कुछ समय

तक उस जीव को ऊपर के लोकों में रहना पड़ता है। वहाँ उसको सद्गुरु के दर्शन भी मिलते रहते हैं। फिर जब कोई सन्त सद्गुरु इस संसार में आता है, तो वह जीव इस संसार में जन्म लेकर उस सद्गुरु के सम्पर्क में आता है और बाकी की कमाई पूरी करके अपने निजघर वापिस पहुँच जाता है। बाकी की कमाई का मतलब यह है कि जीव को यह ज्ञान हो जाय कि अन्तर में, जो रंग-रूप प्रकट होते हैं वह सब माया का खेल है। तुम लोग मेरे पास पारमार्थिक दृष्टि से नहीं आते। जो लोग पारमार्थिक दृष्टि से मेरे पास आयेंगे और मेरी बात को ध्यान से सुनकर उस पर अमल करेंगे, वे इस चक्कर में नहीं पड़ेंगे। क्योंकि अन्त समय, मेरा यह ज्ञान जब तुम्हारे सामने आयेगा, तो तुम प्रकाश, शब्द तथा अपने रूप में जाने के लिए विवश हो जाओगे। जब तक रंग-रूप तुम्हारे सामने आते रहते हैं, चाहे वे किसीके भी क्यों न हों, वे तो काल और माया के चक्कर हैं। जब आपको इस बात का ज्ञान हो जायेगा, तो फिर जब तुम्हारा अन्त समय आयेगा, तो तुमको गुरु का ही नाम याद आयेगा। गुरु का नाम क्या है? गुरु का नाम है राधास्वामी! राधास्वामी क्या है? सुरत और शब्द। सुरत-शब्द के माध्यम से आप अपने निजघर जाओगे। मेरा सत्संग वह सत्संग है, जो सौ वर्ष की इबादत से, ढाई घड़ी के सत्संग से उत्तम है। परन्तु आप सब इस सत्संग को सुनने के अधिकारी नहीं हो, तुममें से बहुत ही कम इसके अधिकारी हैं। मैं जानता हूँ कि मेरा सत्संग रिकार्ड हो रहा है। भविष्य में जब समझदार लोग तथा सतपुरुष मेरे इन भाषणों को सुनेंगे, तो वे सोचेंगे कि कोई सतपुरुष इस संसार में आया था। मैं फिर आपको यही कहूंगा कि मैं आपको ऊपर नहीं

ले जा सकता, हाँ मेरी वाणी तुमको ले जायेगी :—

नाना कला दिखाय, वही सोचता रहा।
सब की कमाई आप, खड़ा खोसता रहा॥

कैसे ? तुमने बड़ा परिश्रम करके अपने अन्तर में बाबे फकीर या किसी और गुरु या राम या कृष्ण का रूप बनाया, तुम्हारा सारा परिश्रम व्यर्थ गया, क्योंकि यह रूप तो माया है। पूरा सद्गुरु अपनी वाणी से जीव की कमाई पूरी करवाता है :—

क्या क्या कहूँ, अनर्थ बहुत भाँति कर रहा।
बिन सन्त सद्गुरु, वह सभी को निगल रहा॥'

सद्गुरु कौन ?

'सति पुरख जिनि जानिया, सतिगुरु तिस का नाऊ।
तिस के संगी सिख उधरे, नानक हरि गुन गाऊ॥'

यह सत्संग मैं अपने आपको ही करा रहा हूँ। मैं सद्गुरु हूँ, परन्तु बाबे फकीर का नाम सद्गुरु नहीं। मेरे शरीर को पूजने से, मुझे दस हजार रुपया देने से, या मेरा मन्दिर या डेरा बना देने से तुम पार नहीं जा सकते। गुरु की सेवा का फल मैंने सत्संग कराया था। गुरु की सेवा क्या है ?

'दर्शन करे, वचन पुनि सुनें, सुन-२ कर फिर मन में गुनें।
गुन-गुन काढ़ ले तिस सार, काढ़ सार तिस करे अहार।
कर अहार पुष्ट हुआ भाई, जग भव भय सब गई गँवाई।'

यह है गुरु की भक्ति। रुपया देना तो संसार का व्यवहार है। जो दोगे वही मिलेगा :—

'आगे न कोई जाय, इसी में भूला रहा।
माया का झूला डाल, भुवन को झुला रहा॥'

जितने महात्मा इस समय तुम्हें अपने पीछे लगा रहे हैं इनमें से कोई भी सद्‌गुरु नहीं। सद्‌गुरु वह है, जो तुमको चौथे पद में ले जाय :—

'द्वारे के पार काहु को, जाने न दे रहा।
फिर भेद वहाँ के पार का, सब ही ढका रहा।
क्या शेष क्या महेश, सभी हार कर रहा।
बिन सन्त उसके पार, कोई भी न जा रहा।
सो भेद राधास्वामी, सभी को सुना रहा।
जिन पर है मेहर उनकी, वह परतीत ला रहा।

वही भेद यह फकीर चन्द सबको सुना रहा है। यदि मैं अपने आपको राधास्वामी कहता हूँ, तो कौन सा जुल्म करता हूँ। जो भेद राधास्वामी दयाल ने बताया, वही मैं बता रहा हूँ। गुरु का काम है भेद को खोलना :—

'गुरु ने अब दीन्हा भेद अगम का,
सुरत चली तज देश भरम का।
वर्षन लागा मेघ कर्म का,
संशै भागा जनम मरन का ॥'

मैं सोचता हूँ कि क्या मैं पैसा इकट्ठा करने के लिए आया हूँ? नहीं। मैं तो आया हूँ सच्चा ज्ञान देने के लिए। मगर किनको? यह मुझे पता नहीं। मेरे सिर पर गुरु-ऋण था उसको मैं उतार चला।

सबको राधास्वामी!

परमसन्त सद्गुरु
हजूर मानव दयाल जी महाराज
का सत्संग, लालरु

कोई जानैगा जाननहारा, साधो हरि बिन जग अँधियारा।
या घट भीतर सोना चाँदी, या ही में लगा बजारा।
या घट भीतर हीरा मोती, या ही में परखनहारा।
या घट भीतर काशी मथुरा, या ही में गढ़ गिरनारा।
या घट भीतर राम बिराजें, या ही में ठाकुरद्वारा।
या घट भीतर तीन लोक हैं, या ही में सिरजनहारा।
कहें कबीर सुनो भाई सन्तो, या ही में गुरु हमारा।।

गुरुदेव जगद्व्याप्तम्, ब्रह्मा-विष्णु शिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नहि किंचित्, तस्मै श्री गुरवे नमः।।

राधास्वामी,

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप, सत्संगी भाइयो और बहनो, मैं लालरु में दूसरी बार आया हूँ। आज का यह सत्संग नानक चन्द जी के घर पर आयोजित है। आज के सत्संग के लिए जो शब्द पढ़ा गया है, वह कबीर साहिब का है। कबीर साहिब को आदि गुरु माना जाता है। आदि का मतलब है—पहिला या प्रथम गुरु। अब आप कहेंगे कि कबीर साहिब तो पाँच सौ साल पहिले पैदा हुए हैं और दुनिया तो

बहुत पहिले से चल रही है, तो वे आदि गुरु कैसे हुए ? इस सवाल से पहिले हमें यह समझना चाहिए कि गुरु क्या है ? मैंने आपको 'राधास्वामी' शब्द से सम्बोधित किया। राधास्वामी किसी मनुष्य का नाम नहीं है, और यह किसी फिरके का नाम भी नहीं है। आम आदमी यह समझते हैं कि राधास्वामी कोई अलग धर्म है। "राधा" नाम है जगत् का और "स्वामी" नाम है परमतत्त्व मालिके कुल का, जिसने सारा जगत् बनाया। इस सारे जगत् में तीन गुण हैं—सत, रज और तम अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और शिव। यह सारा जगत् अनन्त है, कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड हैं। लेकिन यह जगत् परिवर्तनशील है। इसका आदि भी है और अन्त भी होता है। जो चीज पैदा होती है, वह समाप्त भी हो जाती है। जब मनुष्य मरता है तो लोग शोक प्रकट करते हैं क्योंकि मरने वाले के शरीर से प्यार किया उसने अच्छे-२ काम किये, घर वालों को सुख दिया। इसलिये उसकी याद आती है। यह स्वाभाविक है कि व्यक्ति के मरने पर घर वालों को, रिश्तेदारों को, पड़ोसियों को दुःख होता है। लेकिन सच्चाई यह है कि मरने वाले का शरीर तो चला गया लेकिन उसकी आत्मा नहीं गई। आत्मा अमर है, बल्कि शरीर छोड़ने के बाद मन की शक्ति भी बनी रहती है। मनुष्य की आत्मा मनुष्य के मरने के बाद ऊपर जाकर फिर जन्म ले लेती है। इसलिये किसीके शरीर के चले जाने पर यह अनुमान नहीं करना चाहिए कि वह चला गया। महाभारत के युद्ध में अर्जुन के सामने भी यही समस्या थी। अर्जुन युद्ध में घबरा गया था। उसे ज्ञान नहीं था। अर्जुन ने प्रण किया था कि वह युद्ध करेगा। इस युद्ध का कारण राजसिंहासन तथा अन्य बातें थीं।

भरतवंश में दो भाई थे—पाण्डु और धृतराष्ट्र।

पाण्डु को भरतवंश का राजा बनाया गया क्योंकि पाण्डु के बड़े भाई धृतराष्ट्र अन्धे थे। पाण्डु के पाँच पुत्र थे और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे, लेकिन दो पुत्र बड़े थे. दुर्योधन तथा दुःशासन। किन्हीं कारणों से पाण्डु की मृत्यु हो गई और अन्ध धृतराष्ट्र ने राज्य को संभाला तथा पाण्डवों को भी पाला। जब यह सब राजकुमार बड़े हुए तो राज्य के अधिकार के लिए झगड़ा शुरू हो गया, क्योंकि दुर्योधन राज्य को स्वय लेना चाहता था, जब कि उस पर पाण्डवों का अधिकार था। जब समस्या का समाधान नहीं हुआ तो राज्य का विभाजन कर दिया और पाण्डवों को खाण्डवप्रस्थ दे दिया, जिसको पाण्डवों ने अपने परिश्रम से बसाया और उसका नाम इन्द्र-प्रस्थ रखा। लेकिन दुर्योधन को इस पर भी सन्तोष नहीं हुआ और वह पाण्डवों को मारने के लिए तरह-२ के उपाय करने लगा। लेकिन वे हर बार बच निकलते थे। पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ में एक मायावी महल बनवाया। इन्द्रप्रस्थ को देखने के लिए हस्तिनापुर से दुर्योधन तथा अनेक सम्बन्धी इन्द्रप्रस्थ आये। मायावी महल की एक विशेषता थी कि जहाँ दरवाज़ा दिखाई देता था, वहाँ दीवाल होती थी और जहाँ दीवाल दिखाई देती थी, वहाँ दरवाज़ा होता था। जहाँ ज़मीन दिखाई देती वहाँ पानी होता और जहाँ पर पानी दिखाई देता वहाँ पानी नहीं बल्कि ज़मीन थी। जब दुर्योधन देख रहा था, तो वह ज़मीन समझकर पानी में गिर पड़ा। द्रौपदी ऊपर से देख रही थी। उसने हँसकर कहा, "अन्धे का पुत्र अन्धा ही होता है।" दुर्योधन को यह बात बहुत बुरी लगी। वह तुरन्त हस्तिनापुर वापिस आ गया। फिर कपट से उसने पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए हस्तिनापुर बुलाया। इस जुए में पाण्ढव अपना राज्य तक हार गये और द्रौपदी को भी हार गये। दुःशासन दुर्योधन के

कहने पर द्रौपदी के केश पकड़कर उसे खींचता हुआ भरी सभा में लाया और उसे नंगी करने का प्रयास किया। लेकिन भगवान् कृष्ण ने द्रौपदी की लाज रखी। इस घटना के बाद एक और जुए की बाज़ी लगी, जिसकी शर्त रखी गई थी कि हारने वाला पक्ष 12 वर्ष बनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास में रहेगा। यदि अज्ञातवास में पकड़ा गया तो इस शर्त को पुनः लागु कर दिया जायेगा। इस दाव में भी पाण्डव हार गये और 13 वर्ष के लिए बन में चले गये। जब 13 वर्ष बाद वापिस आये तो उन्होंने अपना राज्य मांगा। लेकिन दुर्योधन ने, राज्य की बात तो अलग रही, एक सुई की नोक के बराबर भी भूमि देना स्वीकार नहीं किया। भगवान् कृष्ण स्वयं दूत बनकर हस्तिनापुर की सभा में गये। उन्होंने दुर्योधन को बहुत समझाया लेकिन दुर्योधन नहीं माना। तब भगवान् कृष्ण ने युद्ध की घोषणा कर दी। जब वहाँ से भगवान् कृष्ण जाने लगे, तो धृतराष्ट्र ने कहा, "महाराज ! आप हमारे यहाँ भोजन करके जाइये।" लेकिन भगवान् कृष्ण ने इन्कार कर दिया कि जहाँ पर न्याय नहीं है वहाँ पर खाना नहीं खाऊंगा। भगवान् कृष्ण विदुर के घर खाना खाने चले गये। विदुर की पत्नी भगवान् कृष्ण की बहुत भक्त थीं। भगवान् कृष्ण जब विदुर के घर पहुँचे तो विदुर कहीं बाहर गये हुए थे और विदुरानी स्नान कर रही थीं। जब उन्होंने सुना कि कृष्ण आये हैं तो वह खुशी से विह्वल होकर बिना कपड़े पहने ही भगवान् के पास दौड़ी आई। कृष्ण ने कहा, "मुझे भूख लगी है।" विदुरानी केले लेकर आई। वह प्रेम में इतनी मग्न थी कि उसे यह भी होश नहीं था कि गूदे की जगह वह भगवान् को केले के छिलके खिला रही है। भगवान् प्रेम के वश होकर छिलके खाये जा रहे हैं। थोड़ी देर में विदुर आ गये। उन्होंने कहा,

"अरी बावली ! तू क्या कर रही है ? भगवान् को छिलके खिला रही है और तू नंगी बैठी है।" जब विदुरानी को होश आया, तब उसे पता चला कि वह नंगी है। तब अन्दर चली गई और कपड़े पहन कर आई। भगवान् कृष्ण ने विदुर को कहा, "मूर्ख ! तूने उसकी समाधि तोड़ दी। उसे प्रेम में शरीर की सुध तक नहीं थी।"

भगवान् कृष्ण ने पाण्डवों से आकर कहा कि अब युद्ध होगा। युद्ध की तैयारियाँ दोनों ओर से शुरू हो गईं। इस युद्ध में सहायता के लिए अर्जुन ने भगवान् कृष्ण को माँगा और दुर्योधन ने सेना, अस्त्र, शस्त्र आदि माँगा। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा "अर्जुन ! मैं युद्ध में लड़ूंगा नहीं।" अर्जुन इस शर्त को मानने के लिए तैयार हो गया। भगवान् कृष्ण अर्जुन के सारथी बने। जब युद्ध शुरू हुआ तो अर्जुन ने युद्धक्षेत्र में भगवान् कृष्ण से कहा "हे मित्र ! तुम मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले चलो। मैं देखना चाहता हूँ कि दुर्बुद्धि दुर्योधन ने मेरे साथ युद्ध के लिए किन-२ लोगों को बुलाया है।" यहाँ पर अर्जुन ने भगवान् कृष्ण को मित्र कहने की गलती की। वह तो परमतत्त्व के अवतार थे। अर्जुन ने कृष्ण को गुरु तो माना था लेकिन उनके शरीर को ही गुरु मान बैठा था। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के रथ को ऐसी जगह खड़ा किया, जहाँ द्रोणाचार्य, कुलगुरु कृपाचार्य, गंगापुत्र भीष्म पितामह दुर्योधन की तरफ से लड़ने के लिए खड़े थे। इन सभी के सामने रथ को खड़ा करने में भगवान् कृष्ण की नीति थी। भगवान् कृष्ण अर्जुन को सबक सिखाना चाहते थे। अर्जुन ने देखा कि उसके सामने वही लोग खड़े हैं जो उसे रोज़ विजयी होने का आशीर्वाद देते थे। यह विडम्बना ही थी कि विजयी होने का आशीर्वाद तो वे अर्जुन को देते थे, पर अर्जुन के ही

विरुद्ध व युद्ध लड़ने के लिए खड़े थे। ये तीनों ही वरदानी थे। अर्जुन सोच रहा था कि यह तीनों (भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य) मरेंगे नहीं और हम जीतेंगे नहीं। इस बात से घबराकर अर्जुन भगवान् कृष्ण से कहने लगा "मैं युद्ध कैसे करूँ? भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य की तो मुझे पूजा करनी चाहिए। मैं उन पर वाण कैसे चलाऊंगा! युद्ध में रिश्तेदार मर जायेंगे।" हमें क्या जरूरत है, राज्य लेने की? राज्य तो सुख भोगने के लिए होता है। जिनके साथ सुख भोगना है, वह तो मर जायेंगे।" भगवान् कृष्ण ने कहा, रे अर्जुन! तू बातें तो बड़ी अजीब करता है। जिस बात का शोक नहीं करना चाहिए, उस बात का तू शोक कर रहा है। तू अपने आपको ज्यादा विद्वान् समझता है। तू सोचता है कि ये मर जायेंगे। अरे! यह बात नहीं है। ये जो राजा लोग हैं, वे पहिले भी थे और आगे भी होंगे। आत्मा तो अमर है। आत्मा केवल शरीर बदलती है। इस शरीर बदलने वाली आत्मा के अनेक शरीर हैं। आत्मा बच्चे के शरीर को धारण करके जन्म लेती है। जब वह शरीर बूढ़ा हो जाता है, तो उस शरीर को त्याग करके फिर बच्चे वाला शरीर ले लेती है।" इस प्रकार भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान दिया।

मैं आपको बता रहा था कि वास्तव में जो आदमी मर गया है, उसकी आत्मा का कभी नाश नहीं होता। यह सारा जगत् पैदा होता है, बढ़ता है और समाप्त हो जाता है। लेकिन आत्मा अवश्य जन्म लेती है। आत्मा अपने आप में अमर है। मैंने आपको सत्संग के आरम्भ में गुरुमन्त्र पढ़ कर सुनाया।

गुरुदेव जगद्व्याप्तम्, ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकम्।

गुरु का मतलब यहाँ ईश्वर-परमेश्वर भी है। ईश्वर

का जो शरीर है वह त्रिगुणात्मक है और यही "राधा" है। जगत् वही है। जगत् को ब्रह्मा पैदा करते हैं, रक्षा करने वाले तथा पनपाने वाले विष्णु हैं और जगत् को समाप्त करके प्रकाश में समेट लेने वाले शिव हैं। लेकिन इन तीनों अवस्थाओं को धारण करने वाला सर्वाधार वह मालिक है जिसे परमतत्त्व कहते हैं। वही "स्वामी" है। आपके अन्दर राधा भी है और स्वामी भी है। आपका शरीर, मन और आत्मा राधा है, लेकिन आत्मा से ऊँची जो सुरत है, आप उसी का अंश हो। वह कभी नाश नहीं होती। राधास्वामी की समझ सच्चे अर्थों में तब तक नहीं आ सकती जब तक हम शरीर, मन और आत्मा को राधा के अन्दर बैठे हुए स्वामी से—गुरु से नहीं मिला देते। राधास्वामी एक हालत है; एक सच्चाई का नाम है। हमारे अन्दर लोक भी है और परलोक भी है। जब इन दोनों का मिलाप हो जाता है, तब मनुष्य को किसी प्रकार का भय नहीं रहता है। सब कुछ आपके अन्दर है। देवी-देवता भी आपके अन्दर मौजूद हैं। असल में इन सबको चलाने वाली जो ताकत है, वह परमतत्त्व है।

'हरि बिन जग अँधियारा रे सन्तो।'

जगत् अपने आप नाश हो जाता है। दुःख आपको तब होता है, जब अँधियारा होता है। यह दुःख क्यों होता है? क्योंकि आप समझे नहीं कि इस जगत् के पीछे जो असली तत्त्व है, जिसमें से यह जगत् निकला है, उसका कभी नाश नहीं होता। इसलिये सत्संग में आपको बताया जाता है कि आपका शरीर, मन और आत्मा आपकी राधा है। जब ये तीनों मालिक से जुड़ जायेंगे तब आप राधास्वामी हालत में पहुँच जायेंगे।

मैंने गुरु को नमस्कार किया। उसका मतलब है कि इस जगत् के अन्दर ब्रह्मा, विष्णु और शिव, मालिक के शरीर हैं। यह मालिक का स्थूल शरीर है, जो दिखाई देने वाला सारा ब्रह्माण्ड है, जिसे ब्रह्मा कहते हैं। मालिक का सूक्ष्म शरीर मन है, जिसे विष्णु कहते हैं यह दिखाई नहीं देता, मगर सारे जगत् का पोषण कर रहा है। इससे परे हिरण्यगर्भ है जो सोने का, चमकदार, प्रकाशमय कारण शरीर है। यह शिव है। इस शरीर को धारण करने वाला परमतत्त्व दयाल है। यदि आप दयाल के देश में पहुँच जाओगे तो काल से बच जाओगे। इस काल के जगत् में सुख भी है और दुःख भी है। अच्छे या बुरे कर्मों का फल अवश्य मिलता है। अज्ञानवश मनुष्य कभी दुःखी हो जाता है कि मैंने तो किसी से कुछ कहा भी नहीं, लेकिन फलाँ व्यक्ति मुझसे क्यों दुश्मनी निकाल रहा है! इस दुःख का कारण तुम्हारे पिछले कर्म हैं। ये तो तुम्हें भोगने ही पड़ेंगे। अगर इन दुःखों से बचना है तो दयाल के पास जाओ। यह ऐसा घर है जहाँ सुख-दुःख नहीं है। इसी घर में हमारा सबका पूर्णपुरुष है।

'सखिया वा घर सब से न्यारा,
जहाँ पूरन पुरुष हमारा।'

वह घर भी आपके अन्दर मौजूद है।

जहाँ नहीं सुख-दुःख, झूठ-साँच नहीं,
पाप न पुण्य पसारा।

हमारा घर भी वही है। उस घर में चले जाने से आपके ऊपर काल के कानून लागू नहीं होते। वही दयाल, जिसे पूर्णपुरुष कहा है, सद्गुरु के रूप में आकर ज्ञान देता है। अब वही दयाल आदि गुरु कबीर साहिब कैसे हुए?

कबीर साहिब आदि गुरु इसलिये हुए क्योंकि उन्होंने आदि कर्त्ता का ज्ञान करा दिया। उनका शरीर तो कबीर का था, लेकिन उनका जो परमतत्त्व का अंश था—वही त्रेता में राम बना, द्वापर में कृष्ण बना। वही अंश आदि से जन्म लेता चला आया है। कबीर साहिब ने अपने वक्त में सीधी-सादी तालीम दी। वही परमतत्त्व दयाल कबीर के रूप में आया, इसलिये आदि गुरु कबीर साहिब को ही कहा गया है।

कबीर साहिब का यह जो शब्द है इसमें बताया गया है कि आपके अन्दर देवी-देवता मौजूद हैं। यदि आप इस मन को हरि के साथ जोड़ दो, हरि का प्रकाश आपके अन्दर आ जाये, रोशनी आ जाये, तो आपको ज्ञान हो जायेगा।

'कोई जानेगा जाननहारा, साधो हरि बिन जग अँधियारा।

वैसे तो मालिक का या हरि का अंश सब जगह मौजूद है, लेकिन अँधियारा इसलिये दिखाई देता है कि हमने हरि का भजन नहीं किया। हमने अपना ध्यान हरि की तरफ नहीं लगाया, जब कि हरि हमारे अन्दर मौजूद है। हमने अपना ध्यान बाहर नाशवान् जगत् में लगा रखा है। इसीलिये हमें दुःख होता है। अगर आपने अपने मन को मालिक की तरफ लगा दिया, तो हीरा-मोती, कीमती चीजें, चमकदार चीजें आपको अपने ही अन्दर दिखाई देंगी। लेकिन असली चीज है परखनहारा। परखनहारे का मतलब यहाँ पर विवेक है अर्थात् जिसके अन्दर विवेक है, उसे परखनहारा कहते हैं :—

'गुरु पशु नर पशु त्रिया पशु, वेद पशु संसार।
मानुष वाको जानिये, जा में विवेक विचार॥'

जो व्यक्ति अन्धे होकर किसीके शरीर को गुरु मानते हैं, वह गुरु-पशु हैं। जो गुरु को परमतत्त्व मानते हैं, वह शरणागत हैं। नर पशु वे लोग होते हैं, जो बड़े-बड़े पदों

पर बैठे हुए अफसरों को ही सब कुछ मानते हैं, उनकी आधीनता को ही सुख मानते हैं। लेकिन आपको न किसी गुरु के शरीर के आधीन होना है, न किसी मनुष्य के आधीन होना है। आपको पूरी स्वतन्त्रता दिलानी है। त्रिया-पशु वे लोग है, जो हर वक्त काम की इच्छा या कामनाओं की पूर्ति में लगे रहते हैं। 'वेद पशु संसार', सारा संसार वेद-पशु बना हुआ है अर्थात् हर व्यक्ति सोचता है कि मेरे धर्म की किताब सबसे अच्छी। इसीके कारण आपस में झगड़े होते हैं।

'मानुष वाको जानिये, जामें विवेक विचार।'

विवेक का मतलब आम समझ नहीं है। विवेक का मतलब है नीर-क्षीर-विवेक। जिसके अन्दर विवेक है, उसे हंस कहते हैं। हंस एक ऐसा पक्षी है, जो मानसरोवर झील में ही मिलता है। यदि उसके सामने दूध रख दो तो वह दूध पी जाता है और पानी छोड़ देता है। जो विवेकशील व्यक्ति हैं, वे जानते हैं कि काल क्या है और दयाल क्या है? असल क्या है? नकल क्या है? इसी विवेक को या ज्ञान को परख कहते हैं।

इस प्रकार हीरे-मोती अर्थात ऊपर ले जाने वाले विचार आपके अन्दर हैं। हीरा-मोती कौन हैं? हीरा-मोती हंस हैं। हीरा-मोती सद्गुरु हैं। लेकिन उसको परखने वाला पहिचानने वाले विवेक होना चाहिए। चीज़ एक ही होती है, लेकिन असलियत को जानने वाला ही उसकी कदर करता है। परखनहारा वही है जिसने यह जान लिया कि हरि के बिना कुछ नहीं है। जिसने मालिक को पहिचान लिया, मालिक के पीछे अपना तन-मन-धन लगा दिया, वही परखन-हारा है।

'या घट भीतर काशी मथुरा, याही में गढ़ गिरनारा।
या घट भीतर राम बिराजे, या ही में ठाकुरद्वारा॥'

काशी, मथुरा अच्छी जगहें हैं। लेकिन यदि आप यह सोचें कि काशी, मथुरा में ज्ञान मिल जायेगा या आपको ... यह गलत है। हाँ, यदि आपका ... रूप तथा कारण शरीर भी हमारे अन्दर है। लोग देवी-देवताओं के दर्शनों को जाते हैं। उनके मन की शक्ति के कारण उनकी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। यदि आप वहाँ न भी जायें तो घर बैठे भी आपकी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं। वास्तव में वह ताकत तुम्हारे अन्दर मौजूद है, लेकिन तुम उस ताकत को समझते नहीं हो, जिसके कारण तुम्हें बाहर का सहारा लेना पड़ता है। लेकिन आपकी इच्छा आपके मन की शक्ति के कारण पूरी हुई है। सभी देवी-देवता तुम्हारे अन्दर मौजूद हैं। खासकर पाँच देवता—गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवी हमारे अन्दर हैं। जो अन्तर्मुखी होता है, उसे ये सारी शक्तियाँ मिल जाती हैं।

हमारे अन्दर जहाँ यह जगत् है, वहाँ परमतत्त्व दयाल तथा गुरु भी है। इसलिये सन्तमत में आपको सबसे पहिले बताया जाता है कि अपना मन शुद्ध रखो, तब मालिक के दर्शन होंगे। आप में शिवसंकल्प होना चाहिए। आप गृहस्थियों के लिए यही रास्ता है। बजाय इसके कि आप मन्दिरों में घण्टे बजाओ, अपने मन को शिवसंकल्प से चलाओ। शिवसंकल्प क्या है? शिवसंकल्प है कि आप अपने शरीर से, मन से तथा आत्मा से किसी को दुःख न दें। जब आप ऐसा करोगे, तो आपको अपने अन्दर के सारे नज़ारे दिखाई देने लगेंगे। मन्दिरों में

बनाकर घर में लाते हैं तो उसे बेटी समझें। लेकिन सास यह भूल जाती है कि वह भी कभी बहू बनकर आई थी।

जब भी बोलो मीठा बोलो। मीठा बोलने में आपके पैसे खर्च नहीं होते। मीठा बोल कर भी आप दूसरों से वही काम करा सकते हैं जो क्रोध से कराते। आप मीठा बोलने की आदत डालें, आपको कोई कष्ट नहीं होगा। आपके सब काम ठीक होते चले जायेंगे और आपका मन भी शुद्ध हो जायेगा। इन्हीं शब्दों के साथ मैं आज का सत्संग समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी !

शोक समाचार

सभी सत्संगी जन को अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित किया जाता है कि हैदराबाद निवासी श्री सत्यनारायण मामा जी, जो परमसन्त हजूर परम दयाल जी महाराज तथा नन्दूभाई जी महाराज के परम शिष्यों में से एक थे, क स्वर्गवास हो गया है।

मानवता मन्दिर परिवार उनके निधन पर हार्दिक शोक प्रकट करते हुए परम पिता राधास्वामी दयाल से प्रार्थना करता है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति दें तथा शोकाकुल परिवार को इस असह्य कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

जनरल सेक्रेटरी

मासिक सन्देश

परमसन्त सद्गुरु हुजूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश,

परमप्रिय सत्संगियो !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई।

आप सबको नये वर्ष की सद्भावना देता हूँ। पिछले मासिक सन्देश में मैंने आपको सत्संग के दौरे की जल्दी में लिखी गई संक्षिप्त सूचना दी थी। उसका कारण यह था कि मैं अमेरिका से भारत में केवल सात ही सप्ताह के लिए आया था और इतना व्यस्त था कि रात को सोने के लिए केवल तीन ही घण्टे मिलते थे। मैं सत्संग देने, दौरे पर जाने, पत्रों का उत्तर देने और लिखने-पढ़ने में बहुत समय देता रहा।

मैं आपको यह सन्देश स्काटडेल ऐरीज़ोना, अमेरिका से लिख कर भेज रहा हूँ। आज पहिली दिसम्बर है। मैं अमेरिका में थोड़े से सत्संग देने के लिए तथा भाग्य माता जी को लेने के लिए आया हूँ, क्योंकि 18 सितम्बर 1989 को उनकी गाल ब्लैडर की शल्यचिकित्सा (Surgery) फेयर-फैक्स अस्पताल अमेरिका में हुई थी और डाक्टर के परामर्श से वह हमारे छोटे लड़के प्रियदर्शी जेतली के पास आराम कर रही थीं।

पिछली बार सत्संग दौरे के विषय में बताते हुए मुझे याद है कि मैंने आपको बता दिया था कि हम 15 अगस्त को श्री जाहन कर्टन के यहाँ रहे। 16 अगस्त को फ़ाल्ज़चर्च के अस्पताल में एक डाक्टर ने भाग्य माता जी का मुआयना (निरीक्षण) किया और कहा कि उन्हें 18 सितम्बर को (लगभग एक महीने के बाद) आपरेशन कराना पड़ेगा।

16 अगस्त को हम एक दिन के लिए वर्जीनिया बीच गये। हमारा वर्जीनिया बीच का यह दौरा व्यक्तिगत था। जज साहिब आचार्य श्री के.पी. वर्मा भी हमारे साथ थे। हम अपने उसी मकान में ठहरे, जहाँ परम दयाल जी महाराज आकर ठहरा करते थे। मैंने आपको पहले भी बताया था कि यह बर्जीनिया बीच वाला मकान मेरे लिए तीर्थस्थान है, क्योंकि इस मकान को हमने परम दयाल जी महाराज के 1976 के दौरे के समय खरीदा था, जब उनके साथ डा० परस राम जी अग्रवाल भी थे। इस मकान में वे काफी दिन तक रहे थे। 1978 में भी आकर इसी मकान में रहे थे। बहुत सी ऐसी बातें हैं जो परम दयाल जी महाराज के दौरे से तथा इस मकान से सम्बन्धित हैं। उनके विषय में मैं आपको कुछ बताना चाहता हूँ।

वह कमरा जिसमें वह सोया करते थे और जिसमें मेरा और उनका व्यक्तिगत सत्संग होता था, अब भी आध्यात्मिक किरणों से ओतप्रोत है। मैं सम्भवतया परम दयाल जी महाराज के इस ऐतिहासिक दौरे की पूरी सूचना आपको फिर कभी दूंगा। यहाँ पर तो केवल इतना बता देना ही आवश्यक है कि आचार्य श्री के० पी० वर्मा वर्जीनिया में हमारे अमरीकी आचार्य विलियम रोडन ह्राईज़र के घर कुछ दिन रहे और उनके घर पर एक-दो सत्संग भी दिये।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

एक सत्संग आचार्य रोडन हाइज़र के विश्वविद्यालय रिचमण्ड में हुआ जिसमें विश्वविद्यालय के प्रोफेसरों तथा विद्यार्थियों ने भाग लिया। आचार्य वर्मा ने मेरे सत्संग देने से पूर्व मेरा परिचय देते हुए बहुत सुन्दर रूप में श्रोताओं को राधास्वामी मत और गुरु की महिमा पर बहुत ही प्रभावशाली प्रवचन दिया। लोगों ने उनके प्रभाशाली परिचय को बहुत ही पसन्द किया।

मैंने अपने सत्संग में 'सुरत-शब्द योग' की व्याख्या करते हुए यह बताया कि यहूदी और ईसाई धर्म की प्राचीन और नई इंजील में भी यह योग गुप्त रूप में मौजूद था। मेरी यह व्याख्या श्रोताओं को बहुत पसन्द आई। यह सत्संग एक सुन्दर विशाल सभाभवन में आयोजित किया गया था। यह भवन रिचमण्ड विश्वविद्यालय के मध्य एक झील के किनारे पर बना हुआ है। झील के चारों ओर सड़क है और छात्रों के पढ़ने के लिए कक्षाओं के कमरे बने हुए हैं। विश्वविद्यालय का यह सौन्दर्य देखते ही बनता है। सारा विश्वविद्यालय सैकड़ों एकड़ भूमि में स्थित है। जब हमारी कार विश्वविद्यालय के प्रांगण में प्रवेश करके झील के किनारे वाली सड़क पर पहुँची और हम चक्कर लगाते हुए उस सभाभवन की ओर बढ़ रहे थे, जहाँ मुझे प्रवचन देना था, तो झील के चारों ओर जगमगाती हुई रौशनी और सुन्दर भवन बहुत ही आकर्षक दिखाई दिये।

प्रवचन के बाद हम डा० रोडन हाईज़र के घर रहे और इसी दिन जाहन कर्टन के घर पहुँच गये। जाहन के घर हम 25 अगस्त तक ठहरे। इसी अवधि में मैं थोड़े समय के लिए फ्लोरिडा भी गया, जहाँ पर क्लियर वाटर नगर में हमारे मानवता मन्दिर को दिलोजान और धन से

सहायता देने वाली श्रद्धालु विशेष सत्संगिन श्रीमती बुश रहती हैं। इसी दौरे पर वह मुझे सैरासोटा नगर में श्रीमती ग्लोरिया आलब्रिटन के पास भी ले गईं। क्लियरवाटर नगर में ठहरने के दौरान में मैं बहुत ही प्रिय सत्संगी कर्नल एलवन ऐशले तथा उनकी पत्नी गेल ऐशले को भी उनके घर पर मिला। वे दोनों श्रीमती रुथ बुश के घर पर भी आये मुझे यह फिर से बताने की शायद जरूरत नहीं है कि श्री ऐशले तथा उनकी पत्नी हमें और भारत के सत्संगियों से बहुत ही प्यार करते हैं। कर्नल ऐशले के द्वारा हम भारतीय सत्संगियों के लिए विशेष प्रकार के कानों को बन्द करने वाले प्लग लाते हैं, जिनके प्रयोग से सुन्न समाधि में बहुत सहायता मिलती है।

अगस्त और सितम्बर के महीनों में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में तमेरिका में फैले हुए सत्संगियों के आमन्त्रण आये थे, किन्तु मैं उसे पूरा न कर सका, क्योंकि हस्पताल के डाक्टरों से हर सप्ताह भेंट करनी पड़ती थी। जिन दिनों में डाक्टरों से परीक्षण के लिए मिलना होता था मुझे भी साथ जाना पड़ता था। डाक्टर भाग्य माता जी को कई बार इसलिये बुलाते थे क्योंकि उन्हें आपरेशन से पूर्व कई प्रकार के परीक्षण करने पड़ते हैं।

यद्यपि हम अमेरिका में पहिले बीस साल तक रहे थे, तथापि हमें डाक्टरों से बार-२ मिलने का अवसर नहीं मिला था। 1971 में भाग्य माता जी का छोटा सा आपरेशन भगन्दर का लिचबर्ग वर्जीनिया में अवश्य हुआ था, जिसमें कोई परेशानी नहीं हुई थी। क्योंकि यह आपरेशन बड़ा था, इसलिये डाक्टरों ने परीक्षण करने के लिए हमें बार-बार बुलाया। डा० वेन एल्फ्रेड एक उच्च कोटि के शल्यचिकित्स क

हैं। यह बहुत ही दयालु तथा मानववादी हैं। उन्होंने -एक महीना परीक्षण करने के बाद आपरेशन की तिथि तय कर दी थी। डा० एलबर्ट की सेक्रेटरी श्रीमती ट्रीमा ने भी बड़े प्यार से भाग्य माता जी का मुआयना इत्यादि किया। मैं आपको इस आपरेशन के बारे में अधिक नहीं बताना चाहता। अन्त में जब मुझे यह बताया गया कि भाग्य माता जी को आपरेशन से एक सप्ताह पूर्व डा० एलबर्ट को मिलना होगा, तो मैंने भाग्य माता जी तथा आचार्य के० पी० वर्मा को तो प्रियदर्शी के पास एटलांटा, जार्जिया में भेज दिया और मैं सत्संग के दौरे पर चला गया। यह सत्संग मिनासोटा विसकाउन्सन, कैलिफोर्नियां, न्यूहैमशायर तथा ट्रिनाडाड में आयोजित हुए। मैं चाहता हूँ कि इनमें से कुछ स्थानों के अनुभवों को अपने प्यारे सत्संगियों के साथ बाँटूं, ताकि वे मानसिक दृष्टि से मेरे साथ रहें। मैं यह जानता हूँ और मुझे बार-२ आपने बताया भी है कि मेरे दौरे के अनुभवों को पढ़ते समय आप सचमुच ही ऐसा महसूस करते हैं कि मैं आपके साथ होता हूँ। यह बात भी सत्य है कि मैं स्वयं यह चाहता हूँ कि मैं आपको उन दृश्यों को व्याख्या दूं जो मेरे अनुभव में आते हैं। उन लोगों का परिचय दूं, जो मुझे मिलते हैं, प्यार करते हैं और भारतीय सत्संगी भाई बहनों के विषय में पूछते हैं और अपने यहाँ के सत्संगों की व्याख्या करूँ। मैं ऐसा इसलिये करता हूँ कि मैं आपके आध्यात्मिक विकास की ज़िम्मेदारी को पूरा कर सकूं। रूहानियत में सबसे अच्छा मार्ग-दर्शन वही होता है, जो गुरु के व्यक्तिगत व्यावहारिक अनुभव पर आधारित होता है। रूहानी मार्ग-दर्शन केवल किताबी ज्ञान पर ही आधारित नहीं होना चाहिए।

दौरे के सम्बन्ध में मैं आपको बताना चाहता हूँ कि 26 अगस्त को मैं श्री अजीत कुमार और उनके परिवार को मिलने के लिए मिनिआपलस मिनासोटा गया, क्योंकि श्री अजीत कुमार और उनका परिवार उनके मित्र श्री चारी की लड़की के विवाह पर मिनिआपलस नगर में गये हुए थे। इस भारतीय बच्ची का विवाह एक अमरीकी नवयुवक से हुआ। यह विवाह का उत्सव अन्तर्राष्ट्रीय विवाह का एक नमूना था, जिसमें सनातनधर्म तथा ईसाई धर्म की संस्कृतियों का मेल हुआ। वधू की ओर से एक सनातनी पुरोहित के द्वारा वैदिक रीति से सप्तपदी की गई और वर की ओर से एक ईसाई पादरी द्वारा ईसाई रीति से विवाह सम्पन्न हुआ। मुझे यह देख कर तसल्ली होती है कि विदेश में रहने वाले भारतीय, मानवता की मिसालें कायम कर रहे हैं और जाति, धर्म, सम्प्रदाय तता राष्ट्रीय सीमाओं को पार करके अन्तरधार्मिक, अन्तःसम्प्रदायिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवाह सम्पन्न कर रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि यह जोड़ा श्री अजीत कुमार के सुपुत्र अजय तथा उनकी पत्नी हावी की भाँति सुख-प्रेममय और समन्वित जीवन व्यतीत करके एक आदर्श मिसाल कायम करे। इस विवाह के पश्चात् श्री अजीत कुमार तथा उनकी पत्नी मुझे अपने घर विसकाउन्सन ले गये।

पहिले हम उनके घर पार्क फाल्ज़ विसकाउन्सन में गये, जहाँ श्री अजीत कुमार एक कागज़ की कम्पनी में उप-प्रधान के पद पर नियुक्त हैं और जहाँ पर एक सुन्दर कुटिया-रूपी झील के किनारे पर बने हुए मकान में रहते हैं। इस झील में अजीत कुमार की चप्पू से चलाने वाली किश्ती भी है। मकान के सामने खुला स्थान है, हरा-भरा मैदान है

तथा घने वृक्ष हैं। मैं इस मकान से प्रातः और सायं मीलों तक घूमने जाया करता था। हम वहाँ दो दिन रहे और उसके बाद श्री अजीत कुमार के ग्रीन बे वाले मकान पर चले गये। जब भी मैं ग्रीन बे जाता हूँ तो श्री अजीत कुमार के परिवार के सभी लोग वहाँ पहुँच जाते हैं। इस बार भी ऐसा ही हुआ। उनके घर बहुत सत्संग आयोजित हुए। हर बार की तरह सैर करते हुए मेरा अजीत कुमार का वार्तालाप ऐसे सत्संगों में बदल जाता था कि हमारी समाधि लग जाती थी। मैं यह चाहता हूँ कि चलते समय यदि इन सत्संगों को रिकार्ड करके मानव मन्दिर में प्रकाशित करा दिया जाये तो आप सब को लाभ होगा।

यद्यपि इस बार मेरा वहाँ रहना कम समय के लिए था, तथापि कुछ सत्संगी मिलने के लिए आये उनसे बातें करते-२ सत्संग हो जाया करता था।

31 अगस्त को मैं शिकागो हवाई अड्डे से ग्यारह बजे प्रातः सैनफ्रेंन्सिस्को कैलिफोर्निया के लिए रवाना हो गया। शिकागो के श्री रमेश गोयल तथा श्री गुरुचरण, जिसे मैं प्रायः चरणजीत कह देता हूँ, हवाई अड्डे पर मुझे मिलने आए। मैं उसी दिन सायंकाल सैनफ्रैन्सिस्को पहुँच गया, जहाँ पर श्री पामस भट्टी, श्री जाह्न रीडन और उनकी पत्नी मेरियन स्वागत के लिए मौजूद थे। जाह्न और मेरियन एक श्रद्धालु जोड़ा है, जो पाँच सौ मील से आकर मुझे सैनफ्रैन्सिस्को में मिलने आता है।

हम पहिले सैनफ्रैन्सिस्को में श्री चरणजीत सोंधू के घर पर गये, क्योंकि वहाँ पर मेरा एक सत्संग आयोजित था। सत्संग के बाद मैं श्री पामस भट्टी के साथ उनके घर सैक्रामेण्टो में गया और वहाँ रहा। श्री भट्टी की माता जी

भी भारत से उनके पास आई हुई थी।

श्री माईक मोहरिक जो बहुत ही श्रद्धालु सत्संगी हैं, वे नवाडा से श्री भट्टी के घर पर आए। उनके रूहानी प्रश्नों से जो वार्तालाप हुआ, वह एक रोचक सत्संग में बदल गया। श्री माईक मोहरिक का प्रेम और उनकी प्रेममयी किरणों से भट्टी का घर पवित्र हो गया। श्री माईक मोहरिक हर साल मानवता मन्दिर को काफी धन देकर सहायता देते हैं। इस बार उन्होंने जयपुर के मानवता मन्दिर के लिए 16000 (सोलह हजार) की धन राशि का अनुदान दिया है।

दोपहर के भोजन के बाद श्री माईक मोहरिक अपने घर की ओर रवाना हो गये और श्री पामस भट्टी अपनी पूज्य माता के साथ सैनोजे शहर में श्री विनोद तथा उनकी पत्नी कुसुम शर्मा के घर ले गये यह दोनों पति-पत्नी तथा उनकी सुपुत्री कुमारी मोनिका बहुत ही श्रद्धालु सत्संगी हैं।

सायंकाल चार बजे के लगभग हम श्री सुधीर भटनागर के घर पहुँचे, क्योंकि वहाँ पर उसी दिन एक सत्संग आयोजित था। मैं आपको यह बताना भूल गया हूँ कि श्री जान शेडन और उनकी पत्नी मेरीअन 31 अगस्त की रात को श्री विनोद शर्मा के घर रहे थे। उन्हें शर्मा परिवार का अतिथ्य बहुत ही अच्छा लगा और उन्होंने शर्मा परिवार की बहुत प्रशंसा की।

एक घटना जिसका उल्लेख मैंने ऊपर वर्णन नहीं किया है यह मेरे प्यारे भारतीय सत्संगियों के लिए विशेष महत्त्व रखती है। वह घटना आपको बता रहा हूँ। पश्चिम में तकनीकी पराकाष्टा पर पहुँच चुकी है। इसके कारण मनुष्य के दैनिक जीवन में बहुत सुख सुविधाएँ प्राप्त हो रही हैं। यदि भारत में भी तकनीकी प्रगति हो रही है, तथापि कुछ वैज्ञानिक सुविधाएँ साधारण जनता को प्राप्त नहीं है। उदाहरण के तौर पर एक सामान्य व्यक्ति

अमेरिका में अपनी निजी कार या हवाई जहाज में ऐसा टेलीफोन लगा सकता है जिससे वह देश विदेश में कहीं भी बात कर सकता है। जब श्री भट्टी मुझे सैनोज़े की तरफ अपनी कार में ले जा रहे थे, तो उन्होंने श्री विनोद शर्मा से सास्था पूछने के लिए कार में लगे हुए टेलीफोन से बातचीत की और एटलाण्टा जार्जिया जो वहाँ से लगभग 2500 मील दूर है। मेरे लड़के प्रियदर्शी के घर पर टेलीफोन मिलाया आधे मिनट के अन्दर 65 मील की रफ्तार से चलती हुई गाड़ी से भाग्य माता जी तथा श्री के. पी. वर्मा से बात की। इधर मोटर कार की रफ्तार और उधर बहुत स्पष्ट बात-चीत एक निराला अनुभव था। मैंने आपको बताया है कि ऐसी सुविधाएँ भारत में उपलब्ध नहीं हैं। उसका मुख्य कारण यह है कि स्वतन्त्रता प्राप्त होने के बाद भी जो सुविधाएँ हमें बिदेशी सरकार द्वारा प्राप्त नहीं थीं वे हमारी अपनी सरकार ने भी हमें आज तक नहीं दीं। हमने स्वतन्त्रता का वास्तविक स्वरूप नहीं पहचाना। मैं स्वयं स्वतन्त्रता सैनानी रहा हूँ किन्तु आजादी प्राप्त होने के बाद पण्डित जवाहर लाल नेहरू के कहने के बावजूद भी मैंने राजनीति में भाग नहीं लिया, क्योंकि मैंने यह निश्चय किया था कि स्वतन्त्र भारत की सेवा मैं सांस्कृतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रों में करूंगा और मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा।

मैंने पहिले भी कई बार कहा है कि एक सन्त तब तक सच्चा सन्त नहीं है और मानव तब तक सच्चा मानव नहीं है, जब तक कि वह अपनी उस मातृभूमि के कल्याण के प्रति तटस्थ है, जिसकी मिट्टी से उसका शरीर बना है। मैं यह आशा करता हूँ कि भारत के नागरिक जिन्होंने बार-२ अयोग्य सरकार को बदल कर, देश भक्ति का सबूत पेश

किया है और संसार को बता दिया है कि वे मतदान में देश-भक्ति से प्रभावित रहते हैं, वे हमेशा देश की भलाई को सबसे ऊँचा मानते रहेंगे। मैं आशा रखता हूँ कि हमारे देश के राजनैतिज्ञ अपनी विचारधारा और दल नीति से ऊपर उठ कर आपस के मत भेदों को समाप्त करके, विज्ञान तकनीकी उन्नति और स्पर्द्धा के युग में, मातृभूमि के कल्याण को सर्वोच्च मानते हुए, देशभक्ति का परिचय देंगे। हम इस समय बहुत पवित्र, सच्चा जनता जनार्दन से परिपूर्ण दृष्टि-कोण अपनाना चाहिए। जिसमें हमारे राष्ट्र की उन्नति परम लक्ष्य स्वीकार किया जाय। इस आदर्श को अपना कर हम भारत में एक ऐसा प्रजातन्त्र स्थापित कर सकते हैं, जो दूसरे देशों के लिए मार्ग दर्शन करें।

मैं इस मासिक सन्देश में कहीं से कहीं चला गया। हमारी समस्याओं का मुख्य कारण यह है कि अहंकार हर हर क्षेत्र में बाधा डाल रहा है। जो कुछ मैंने ऊपर लिखा है उसे भगवान कृष्ण ने निष्काम कर्म के रूप में प्रस्तुत करते करते हुए कहा है कि यदि हम बिना किसी स्वार्थ और अहंकार के कर्म करते हैं, तो हम पूर्णता को प्राप्त कर सकते हैं। उन लोगों के लिए एक स्थान पर बैठ कर घण्टों तक समाधि लगाने की आवश्यकता नहीं जो सच्चाई और ईमान-दारी से अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं। आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने के लिए, सामान्य योग के द्वारा सभी वासनाओं को त्यागना पड़ता है, जिससे कि साधक समाज और सम्प्रदाय से ऊपर उठ कर शिव संकल्प द्वारा मन की एकाग्रता को प्राप्त करे। यह विधि धीरे-२ जगत् से अलग होने की अर्थात् वैराग्य की विधि है जिसे सांख्य योग भी कहा जाता है। किन्तु योग की विधि वैराग्य की नहीं, अपितु अनुराग

की है, जिसे कर्मयोग भी कहा जाता है। इस योग के द्वारा व्यक्ति अपने व्यवसाय एवं कर्त्तव्य में इतना कुशलतापूर्ण व्यस्त हो जाता है कि व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाये। इसलिये ही भगवान् कृष्ण ने कहा है कि कर्म की कुशलता ही योग है। राधास्वामी मत इस सच्चाई को एक नये ढंग से प्रस्तुत करता है। सद्गुरु के प्रेम में रत हो जाना योग की पराकाष्ठा है। मैं इस योग की व्याख्या आगे के किसी मासिक सन्देश में करूंगा। ऊपर दिये गये विवेचन में मैंने आपको सन्तमत की दृष्टि से कर्म का महत्त्व बता दिया हैं।

विदेशी यात्रा की सूचना देते हुए मैंने आपको यह बताया था कि पहिली सितम्बर 1989 को श्री सुधीर भटनागर के घर पर सत्संग हुआ। इस सत्संग में भारतीय सत्संगियों के अलावा अमेरिकन सत्सगी भी थे। जिनमें जान रीडन तथा उनकी श्रद्धालु पत्नी मेरियन मुख्य थे।

दो सितम्बर को मुझे प्रातःकाल सेनोजे से हवाई जहाज़ से लासएँजलस जाना था। परन्तु प्रेम से भरपूर जाहन तथा मेरियन अपनी वैन में बैठ कर लास एञ्जलस के लिए पहिली सितम्बर को रात को ही रवाना हो गये। इस श्रद्धालु दम्पति की श्रद्धा तथा प्यार का ठिकाना नहीं। जब तक मैं कैलीफोर्निया में रहा, वे मेरे साथ रहे। मैं दो सितम्बर प्रातःकाल साढ़े छः बजे सेनोज़े हवाई अड्डे से उसी दिन प्रातःकाल साढ़े सात बजे लासऐञ्जलस पहुँच गया।

इस मासिक सन्देश को मैं यहीं समाप्त कर रहा हूँ। सितम्बर और अक्तूबर के शेष दौरे की सूचना अगले महीने में दी जायेगी। मुझे आशा है कि आप इस संक्षिप्त सन्देश को ध्यान से पढ़ेंगे और लाभ उठायेंगे। मैं आप सबको इस

महीने की सद्भावना, नववर्ष की शुभ कामना तथा आशीर्वाद भेजता हूँ। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि यह नया वर्ष आपके लिए सुखमय, समृद्धिशाली, आनन्ददायक तथा शान्तिप्रद रहे।

सबको राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

महत्त्वपूर्ण सूचना

सत्संगी जन को सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि परम सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हुजूर मानव दयाल डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का शुभागमन अमरीका से भारतवर्ष दिनांक 24-1-1990 प्रातःकाल 3-00 बजे की उड़ान से इन्दिरा गाँधी टर्मिनल हवाई अड्डा, दिल्ली में हो रहा है। दिल्ली एवं जालन्धर में हिज़ होलीनेस का सत्संग कार्यक्रम इस प्रकार है :—

24-1-1990	सत्संग सायं 5 बजे से	सबवान पब्लिक स्कूल, पुराना राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली।
25-1-1990	सत्संग अपराह्न 3 बजे से	श्री त्रिलोक कुमार शर्मा, सन्त नगर, जालन्धर।

जनरल सेक्रेटरी

पत्र द्वारा ज्ञान

(परम सन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज का पत्र विश्वमित्र सिराज के नाम)

होशियारपुर
30-10-89

मेरे अपने ही आत्मांश परमप्रिय
परम दयाल जी के प्रतीक, विश्वमित्र !
राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई ।

आपका बहुत ही प्यारा संक्षिप्त लेकिन अनुभवपूर्ण उर्दू में लिखा हुआ पत्र मुझे मिला। भारत में आते ही मैं सत्संगों के दौरे में व्यस्त हो गया। 8, 9, 10 अक्टूबर को देहली में फकीर-सन्त-सम्मेलन हर वर्ष की भाँति मनाया गया। इस वर्ष दूर-दराज से आने वाले और देहली सत्संगियों की संख्या बहुत ज्यादा थी। जैसे कि मैंने आपको बताया है, मेरा अपना मन यह नहीं कहता कि सत्संग आयोजित हो और ज्यादा से ज्यादा सत्संगी लाभ उठायें। मुझे सत्संग देना इसलिये अच्छा लगता है क्योंकि हमारे परमगुरु परम दयाल जी महाराज ने मेरे जिम्मे यह duty लगाई थी कि उनके चोला छोड़ने के बाद मैं अपने ही कल्याण के लिए और सहज समाधि की आखिरी मंजिल तक पहुँचने के लिए सत्संग देने के द्वारा उनकी सेवा का महान् कार्य करूँ। महाराज जी के मर्सी हस्पताल, पिट्सबर्ग में कहे गये ये शब्द मेरे कानों में एक मधुर संगीत की तरह गूंजते रहते हैं। यही गूंज मेरे द्वारा सत्संग के रूप में प्रवाहित होती है। जिसमें कई बार मैं और सत्संगी डूब जाते हैं। मुझे आत्मविस्मृति का ऐसा अनुभव होता है कि मैं बोलते हुए भी नहीं बोल रहा। मानो कोई अदृश्य शक्ति मेरे से यह महान् कार्य करवा रही है। किन्तु एक अनुभव जो

पिछले दो वर्षों से मुझे परमानन्द में विलीन कर देता है, यह है कि जब मेरा सत्संग पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो सत्संगी, शब्द पढ़ने वाले और मैं एकरस हो जाते हैं। शायद मैं इस अनुभव को शब्दों में व्यक्त नहीं कर पा रहा। मैं इस अनुभव को उन्मुन अवस्था कह सकता हूँ। जब सत्संग समाप्त होता हे, ऐसा लगता है कि मैं एक आनन्दमयी गहरी निद्रा से जागा हूँ। इसके साथ-साथ मैं शरीर, मन में हल्का-पन महसूस करता हूँ और यह अनुभव करता हूँ कि मेरे सिर से कर्त्तव्य का बोझ उतर गया। उधर सत्संगियों को यह हालत होती है कि उनमें से बहुत से श्रद्धालु और प्रेमी अश्रुओं के समुद्र में डूब जाते हैं और उन पर एक प्रकार की आनन्द की हालत तारी हो जाती है। कई बार तो हज़ारों सत्संगी इस आनन्द का अनुभव करते हैं और उन्हें समय का ध्यान तक नहीं रहता है। ऐसे ही परम दयाल जी ने स्वयं वर्षों तक सत्संग दिया है। कभी-२ वह कहा करते थे कि मैं सत्संग में सत्संग देते समय सभी सत्संगियों को राधा-स्वामी अवस्था में ले जाऊँ। उनके विचार की यह धारा ही मेरे ऊपर दिये गये अनुभव का कारण निश्चित रूप से हो सकती है। जो कुछ भी हो, मेरा यह अनुभव दिनो-दिन बढ़ता चला जा रहा है। मैं इसके लिए फकीर के चोले में आये हुए उस परमतत्त्वाधार मालिके कुल सद्गुरु वक्त का लाख-२ शुक्रिया करता हूँ और बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

आपका 9 अक्तूबर का पत्र संक्षिप्त होते हुए भी मेरे मन में हिलोर पैदा कर रहा है। जो तड़प आपको खींचकर मालिके कुल की तरफ ले गई, जिसने आपको मालिक से मिला दिया और बेफिक्री का नामदान दे दिया, वही तड़प एक विशेष रूप से मुझे भी उसी सद्गुरु के चरणों में ले

गई। जिसके रूप में हम दोनों ने सौभाग्यवश मालिके कुल को साक्षात् देखा है, उसके चरणों को छूआ है, उसकी वाणी को सुना है और उसका सच्चा हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त किया है। इसलिये हम दोनों उसीका रूप हैं, उसीका अंश हैं और उसीमें ओतप्रोत हैं।

मेरे प्यारे विश्वमित्र मैंनें स्वयं इस बार खासकर देखा कि तुम्हारे में एक दायमी खुशी प्रवेश कर गई है। हालाँकि मुझे भी निन्दा-स्तुति से किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। लेकिन तुम्हारे में इस अवस्था को देखकर मुझे यह तकवियत मिलती है कि मैं सच्चे मार्ग पर अकेला नहीं हूँ। इसलिये मेरा तुम्हारे प्रति और तुम्हारा मेरे प्रति एक विशेष आकर्षण है। मैंने कृष्ण मन्दिर के प्रबन्धकों का निमन्त्रण इसलिये स्वीकार किया था कि हम दोनों फिर आध्यात्मिक धारा में एक होते हुए भी स्थूल रूप से मिलेंगे। मेरे आने पर वैसा ही हुआ। उन हज़ारों लोगों को भी हमारे दोनों के माध्यम से आनन्द मिला। इस बार उनमें से बहुत से लोगों ने ऐसा महसूस किया, जैसे कि मैं उनका सम्बन्धी था। हालाँकि मुझे आत्मिक दृष्टि से उनका यह आनन्दरूपी रिश्ता अच्छा लगा फिर भी मेरा attachment नहीं हुआ। उसका कारण यह है कि जिस परमगुरु की कृपा से उसके दोनों आध्यात्मिक पुत्रों को अन्दरूनी शान्ति मिली है, उसी की radiation से सारे कार्य-क्रम चल रहे हैं। इसलिये हमारा इस बार का मिलन बहुत विशेष था। मैंने तुम्हें प्रातःकाल swimming pool में तैरते हुए, बगीचे में काम करते हुए और घर में बैठते हुए खाना खाते हुए देखा और तुम्हारे साथ बहुत से स्थानों पर भी गया। लेकिन इन सब अनुभवों में ऐसा लगा कि हम एक-दूसरे से दूर नहीं हैं। जब तुम अपने काम में व्यस्त होते हो, मैं अपने चिन्तन में या घर आने वाले लोगों से बातचीत

करने में व्यस्त होता हूँ तो भी मुझे ऐसा लगता है कि हम अपने-अपने क्षेत्र में व्यावहारिक कर्त्तव्य निभाते हुए भी एक हैं और एक ही उद्देश्य की पूर्ति कर रहे हैं। तुम्हारे पत्र ने ऐसे विचार मेरे मन में पैदा कर दिये हैं, मैं समझता हूँ कि मेरा मन मरा नहीं न वह भूत बना है बल्कि उसने अपना रुख बदल दिया है और हमारा सहयोगी हो गया है। मैं नहीं जानता कि मैं क्या लिख गया। मुमकिन हो कि मैं ग़लत होऊँ। तुम सच्चे दिल से इस पत्र को पढ़ कर मुझे अपनी प्रतिक्रिया (reaction) लिखो। ताकि मैं फिर अपने अन्तस् में जाकर विचारों का मन्थन करते हुए यह जान सकूँ कि मैं कहाँ तक सहज समाधि का अनुभव कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि तुम्हें इस पत्रव्यवहार को प्रकाशित करने में कोई संकोच नहीं होगा क्योंकि इससे सत्संगियों को लाभ हो सकता है। मैं उन दो महानुभावों को मानव मन्दिर भिजवा दूंगा जिनका पता आपने अपने पत्र में लिखा है। मेरी ओर से रामप्रसाद को, लान्स को, दीनानाथ को, भीमसेन को गुरु को और सब मिलने वालों को, मेरी प्रिय बेटी शान्ति तथा बच्चों को और पंडित मोती लाल जी को सद्भावना, प्रेम और हार्दिक आशीर्वाद। शेष आपके पत्र आने पर। मैं 26 नवम्बर को अमेरिका में Loges University एरीजोना में 3 दिसम्बर को सत्संग और Meditation workshop देने के लिए आ रहा हूँ। आपसे टेलीफोन पर भी बात हो सकेगी। मैं हृदय से आपको सद्भावना, आशीर्वाद और नमस्कार भेजता हूँ।

आपका फकीरमय
मानव

नमन

विनती मेरी सद्गुरु सुन लो
मैं चरणों का हूँ दास प्रभो,
मुझको निज चरणों में रख लो।
प्रभु तेरे चिन्तन मे मेरा
यह जीवन जग का अब कर लो।

क्षण क्षण प्रभु की ही लीला हो
प्रतिक्षण प्रभु का हो हो चिन्तन।
क्षण-क्षण प्रभु की ही गुणगाथा
प्रतिक्षण प्रभु का ही पुर्नमिलन।

प्रभु प्रेम - जलाशय में मेरा
अस्तित्व समर्पित हो जावे।
प्रेरित प्रभु की प्रेरणामयी
इस ज्ञान-शक्ति में घुल जावे।

अन्दर का खाली हो जाये
बाहर अन्तर्मुख हो जावे।
जो बाहर है वह अन्दर हो
अन्दर का बाहर हो जावे।

अन्दर बाहर में भेद न हो
अन्दर बाहर प्रभुरूप प्रखर
प्रभु की प्रभुता प्रसृत होकर
कर दे मेरा लघु रूप मुखर।

वह सत्य-संध महिमा मण्डित
उसकी गरिमा का दर्शन हो।
निशिदिन उसका ही चिन्तन हो
हर क्षण हर पल हो बुद्धि विमल।

कल्पना चक्ति अब सो जाए
अर्चना शक्ति हो परम मुखर।
जग मिथ्या है जग-संग छोड़ो
जग में जग जाए शक्ति प्रखर।
बिखरी खोई, खोई मेरी
प्रभु भक्ति शक्ति हो जाए सजग।
जिस परम तत्व की भक्ति है
ममता-मद् दोलन झूली है।
जिस शांति प्रेम से वंचित है।
जिस परम प्रकाश को भूली है।

जिस तत्व अलौकिक से बिछुड़ी।
जिस रूप अलौकिक से निचुड़ी।
जिस सत्य लोक से दूर हुई।
जिस मृत्यु लोक में जा पहुँची।

अस्तित्व सभी अब जग जाये।
जिस हेतु हुई वह हो जाए।
शुभ मंगलमय यह ज्योति जगे
जग मंगलमय ही हो जाए।

यह काम - क्रोध - मद - लोभ - अहं
मत्सर - ममता - आलस्य आदि।
जो मुझे घेर कर बैठे हैं।
दरवाजा रोके रहते हैं।

जो प्रतिक्षण में दूषित मन कर
अंत: को दूषित करते हैं।
जो बड़े घिनौने सपने हैं
जो झूठे बन गये अपने हैं।

जो तत्त्व प्रेम से मिलने हैं,
हर क्षण बाधा पहुँचाते हैं।
जो लौकिक गुण की माया में
अपना आवास बनाते हैं।
प्रभु इन सब से रक्षा होवे।
इनका बन्धन सब कट जावे।
ये बाधाएँ सब हट जावें
शुभ प्रेम मिलन जो हो जावे।
मैं निम्न लोक में भूला हूँ
मैं सत्य लोक का बासी हूँ।
प्रभु मुझ पर परम कृपा कर दो
निज चरणों में यह मस्तक रख लो।

छविनाथ प्रसाद ओझा

परमसन्त सद्गुरु हजूर मानव दयाल डा. आई. सी. शर्मा जी महाराज का वसन्त सत्संग-दौरा प्रोग्राम का विवरण

30-1-90	हनमकुण्डा को प्रस्थान ए. पी. एक्सप्रेस द्वारा।	
31-1-90	सत्संग प्रात: और सायंकाल	हनमकुण्डा
1-2-90	,, ,, ,, ,,	(आ० प्र०)
2-2-90	करीमनगर प्रस्थान हजूराबाद होते हुए सत्संग सायंकाल	करीमनगर
3-2-90	हैदराबाद आगमन सत्संग सायंकाल	वैदिक धर्म प्रकाशक स्कूल, शालीबन्दा
4-2-90	सत्संग प्रात: सत्संग सायंकाल	आंध्र सरस्वती परिषद कबीर डेरा, मोक्षा महल
5-2-90	सत्संग प्रात: सत्संग सायंकाल	जैन मन्दिर, रानी गंज सिकन्दराबाद अंजैया आडिटोरियम श्याम नगर, विठ्ठल बस्ती
6-2-90	सत्संग प्रात: सत्संग सायंकाल	हरि भवन, कालिका बन चार कमान निज़ामाबाद
7-2-90	सत्संग प्रात: सत्संग सायंकाल	निज़ामाबाद आरमूर लक्ष्मी नारायण मन्दिर जे. तुकाराम, म. नं 1-12-5
8-2-90	अहेरी आगमन	
9, 10-2-90	सत्संग प्रात: व सायं	अन्तर्राष्ट्रीय मानवता सोसाइटी अहेरी
11-2-90	नागपुर आगमन	
12-2-90	सत्संग प्रात:	श्री आर. डी. कोठारी 82 केनाल रोड, रामदास पेठ, नागपुर

विशेष जानकारी हेतु निम्न पते पर सम्पर्क करें :-

श्री रूपचन्द देवड़ा, प्रेसिडेण्ट] टेलीफोन नं. : 557235, 45569
श्री भगवान व्यास, सेक्रेटरी] 551861, 44143
अन्तर्राष्ट्रीय मानवता शिक्षा सोसायटी
15-8-441, फीलखाना, हैदराबाद (आं. प्र.)

जनरल सेक्रेटरी

महत्त्वपूर्ण सूचना

परम सन्त सद्गुरु हिज़ होलीनेस हज़ूर मानव दयाल
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज का बसन्त दौरा-प्रोग्राम
(11 फरवरी 1990 से आगे का)

तारीख	कार्य-क्रम	स्थान
11, 12 फरवरी 1990	सत्संग	श्री आर. डी. कोठारी 82, केनाल रोड, रामदास पेठ, नागपुर
13 फरवरी 1990	प्रस्थान एटावा के लिए	
14,15,16 फरवरी 1990	सत्संग प्रातः व सायं	एटावा (तशाना के पास)
16 फरवरी 1990	संध्या प्रस्थान इटारसी के लिये	(म. प्र.)
17, 18 फरवरी 1990	सत्संग प्रातः व सायं	स. चरनजीत सिंह, इटारसी श्री सुन्दर दास जी, इटारसी
19 फरवरी 1990	प्रस्थान इलाहाबाद के लिये	
20 फरवरी 1990	सत्संग	श्री सुमित्र कुमार गौरी भवन 397/13C/2A मीरापुर इलाहाबाद (उ. प्र.)
21,22,23 फरवरी 1990	सत्संग प्रातः व सायं	राधास्वामी धाम, ज्ञानपुर रोड (उ. प्र.)
23 फरवरी 1990	सत्संग सायं	श्री राधे रमण जी 9, विवेकानन्द नगर संस्कृत विश्वविद्यालय के पास वाराणसी (उ. प्र.)
24 फरवरी 1990	सत्संग	आचार्य श्री कृष्ण मोहन तिवारी 367, मोती नगर, लखनऊ
25 फरवरी 1990	प्रस्थान होशियारपुर के लिये	

जनरल सेक्रेटरी

Manav Mandir

ENGLISH SECTION

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and Uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

January 10th, 1990.

MANAVTA MANDIR
Hoshiarpur, (Pb.) India.

The Nature & Purpose of Yoga

by

Data Dayal Maharshi
Shiv Brat Lal Ji Maharaj Varman

(Continuation of Last Month's Satsang)

IV

The subject is unfamiliar, and at every step there is the dread of its becoming tedious, which we want to avoid. Our aim is to present it in the most easy, practical and interesting form to alleviate its tediousness and bring to the mind of the reader what we want to infuse into it.

From the last, it will be evident that we feel surrounded with three dimensions : causal, subtle, and gross, which we have enumerated as 'Para-Brahmind,' 'Brahmind,' and 'Pindand,' i.e. the causal-Bodied Universe, the Subtle-Bodied Universe, and the Gross-Bodied Universe. There can be no effect without cause and the cause pervades its effects in its various stages. Cause is one and its effects are two in this case at least, from obvious points of view. The realm of effect, at least its gross aspect, is composite of so many details that it will be impossible for

us to deliniate it in its various specified forms. we shall do this as we proceed further.

At the very outset, it should be noted that every universe, in its various items, is nothing but a reservoir or fountain-head of the tiny drops that compose it. So, the Causal Universe, we may without any fear of contradiction say, is the source or spring of all the causes that are latent in it but find scope in the stages that follow and thus become patent. In the same manner, the subtle Universe contains all the items of subtlities that get manifested in their manifold and detailed forms down below. Likewise, the Gross Universe is the source of numerous grossities underlying it, that assume outward expressions in the course of evolutionary processes. The cause is the seed as it were, and the devolution, the involution, and the evol tion are its various manifestation. It germinates, grows overgrows and fructifies. The cause lies bidden in its effects. So far, we think we have explained this point satisfactorily: and now for its details.

The animate objects are possessed of three consciousnesses, viz., wakefulness, dream, and absorption (sound sleep). This absorption (sound sleep) is cause. It is reversion to the original source. Everything has been swallowed up there, as the seed swallows the tree, branches flowers, fruits, leaves,

etc. etc. It is the sum and substance of all that had become apparent. The dreamy process is the subtle state of manifestation. Everything in it is delicately crafted with nicety of distinctions. It may be likened unto the states of germination, sprouting, budding, vegetation, growth etc., inwardly, as the embodied. One observes, experiences, and experiments in his introspectionwhen engrossed in and with dreams. It is confined to the internal process of in-growth, while wakefulness is the gradual progress externally, where in the cause gets dense and visible to the naked eyes. The tiny drop, as it passes in this way from cause to gross, attains the three sports of appearances inborn and inherent in it. He thus gets awakened, gets dreamy, and gets absorbed in himself which states are linked with the tri-lateral reservoirs detailed above. It is here, in this tiny entity, that we find the Principle of One-in-Three and Three-in-one. It is Unity: it is Triplicity united into One.

V

Now we come to further details.

The awakened soul, performing its functions in the sensual plane of his physical frame, is technically called in Sanskrit, 'Vishv' i.e. worldly, or the awakend State. Here, He enjoys the gross food of his senses, the ailment necessary for the nourishment of the gross body which confines him. As is the

devotee so is his God. The Supreme Item, or rather the Supreme Deity predominant in this gross plane, acting as a Reservoir for holding these tiny animated beings, is called, from the point of view of these waking souls, 'vishvanar' i.e. relating to all men. This is the God of the God of the world, and acting as an ocean. He has all the wakeful entities abiding in Him. He pervades all, and no being is exempted from His influence. He is immanent in these, and Omnipotent.

In another state, the dreaming soul in the subtle body which is inclosed in and within this body, gets the name of 'Tejas' i e., shining one, effulgent in his own effulgence, conscious of the dream-consciousness, enioying the subtle food-ailment of thought, intellect, mentality etc., which is nutritious for the subtle body. Just as the dreamer, entering into the interiority of his subtle abode, gets himself engaged in thoughts and fancies, and plays with the images in the mind, so is God the Dreamer peculiar to the subtle Universe, the Reservoir of subtilities. From the point of view of the tiny dreaming entities, He gets the name of 'Antaryami' i.e., He who pervades the whole subtle-system and is ominipresent there. He is the supreme ruler of this universe, controlling its economy to the full. He is the collective or aggregate of the living substances inhabiting it. The word 'Antaryami' is derived from two Sanskrit roots

'Antar' (inside), 'Yamin' (to watch). Also 'Yamini' means "Night" as well.

Then comes the third condition 'Sushupti' (dreamless sleep, sound sleep, absorption or dreamlessness etc.), where in there is neither wakefulness nor dream. The tiny creature inhabiting this region is technically called 'Pragya' i.e. wise and knowing (from Sanskrit, parigyan or Prignya). He is as if he were full in himself. His consciousness is complete there, bereft of discriminality or partial perception, wanting nothing, desiring nothing, enjoying the aliment of Bliss which is the nutritious nutriment necessary for the causal-body. Here, the sleeping entity, though separate, has its individual-self apparently absorbed in the Cause, Causal-reservoir or Causal-fountain-head. The supreme Deity which controls and regulates the economy of this Causal Universe, is called 'Hiranya-garbha or Sutratma (Sutra=thread, and Atma=soul). All are tied with and in Him just like so many threads in the cloth. Herein He is Omniscient and pervades the whole system.

Now, this description of the Macrocosm and the Microcosm is, though tittle, cimplete in itself, showing the similarity between the individual-self and the Universal-Self.

Here ends the purport of the formula "One-in-three," and "Three-in-One," and we too finish the

statement of "Unity-in Trinity" and "Trinity-in-Unity"

VI

One confined to the realm of Trinity, does not rise to the pinnacle of Truth or Spirituality. The Initiate is required to make ascent to the Fourth Heaven where he will get a chance of enjoying the Supreme Felicity of Union with the Heavenly Father. That is what had been hinted at in enigmatical and ambiguous terms in the so-many Scriptures. In the Trinity there is no Pure Spirituality in the true sense of the term. That is the realm of cause and effect wherein Spirituality is enveloped in the sheaths of cause and effect. What a man sows, he reaps. The law of cause and effect has its authority in these regions. Whatever preachings we find here, they do not tend to equality, and much less result in Unification. A man might be pious, might be ethical, might be virtuous according to the relative senses of the terms, but these lack Spirituality. It is something different from them. They are only conventions and covenants or necessary social laws that have their value existent in the social organization of the human beings. They need not be decried. They are essential according as the by-laws that govern the human economy. Here down below, from cause to effect, we are confronted with Matter. Matter here, is the supreme factor in its various forms and it has bound down the Spiritual Entity. Spirituality should be

sought beyond this realm of Matter. Its Government, if it is a Government at all, is in the Heaven and not below. Very few comprehend these teachings, for they have been shrouded in mystery and their exposure has been regarded as throwing pearls before swine. Study yourself, and find out how far this statement is correct. The the Riddle of the Universe, if it is to be solved at all, finds its solution in the embodied Spirit. He is One and He is Three. He is Three and He is One. He is Holy Ghost (cause). He is God The Father (Subtle). He is God the Son (Gross). Is not this Kingdom of Trinity lying within himself and within his Self? How ignorant he is and bent on repeating the aphorism or formula of Trinity without knowing its purport? Will it do any good to him? Will it? For, as yet, he is beyond the realm of Reality of which, properly spaking, he has acquired no glimpse at all. Seek the kingdom of this **God** within your 'Self' and much as you can; but this Fact is distant and is not in one's easy intellectual grasp. Grope in the dark as much as you can; unless you are guided by an Adept Master through the process of Yog-training, Light will not burst forth on you, and we are afraid you will not be able to get the clear vision of the **Light** that shines above in its full and glorious splendour somewhere near you, within you, and beyond you. No amount of theology or theosophy will be of any avail. This is the Message of the Master for the aspirant souls that thirst after Truth; and anything falling short of it would not satisfy them.

Methods for Life's Reform

by

Param Sant Param Dayal
Pt. Faqir Chand Ji Maharaj

Reform thee, thy human life;
thou my friendly Surat.
Come soon under refuge of Lord;
develop thou love within thee.
Get head line filled, with vermilion of devotion;
beg for perfect ornamentation.
Forgiveness, veil, mercy as Sari;
wear and go to Lord's Court.
Enjoy the Bliss of Lord's Palace;
throwing ash upon this world.
Radhaswami is the True-Lord;
keep in thy mind His Holy Feet.

In this hymn, a thought for reforming human life is given. For the reformatian of my life, Hazur Data Dayal Ji imparted me NAM in 1905 A.D. At that time I had determined that I shall speak my experience of life to this world.

After a long search I am to say that this NAM

has led me to such a sublime stage, where neither Dharam nor sect exists, where neither Guru nor disciple exists; where neither Lord nor the devotee exists and neither the deed nor the doorer exists. We all have come from that primary stage. Radha-swami Dayal has referred to this Truth in his hymn on Jayesth Month and Kabir Sahib has referred to this sublime-Truth in his hymn entitled "Adi-Dham"

Pandit Ji has come to me from Kurukshetra and he wants that I should impart NAM to him. I am not an educated man. I am not an orator. I express my experiences in very simple language. When some unknown man comes to you, you ask him his name and some other things concerning his life or you become anxious to know about that man. He tells you his name and other particulars asked for Similarly, when I came into this world, I developed an anxiety to know who am. I After a long struggle I have known who I am. So, what is NAM? It is to reveal to the novice his identity and his source from where he came to this world. You study the human life around you. A woman gives birth to a child and hands over that child to some one. If that child is not told about his father, his family and his real home, he would not know any-thing. When you are asked about your parents you tell that such and such are your father and mother, But we do not have any proof thereof. At the time

of birth we are not aware of our parentage. But the people around us tell us about our parentage and our family, as I was told that my father is Sh. Mast Ram and mother Smt Parvati Devi and I was born in village Bhanjhal. When I heard this all, time and again, I was convinced about my parentage and family. This fact was further confirmed by the love and affection of my mother and father for me, Similarly this NAM has its importance for the novice, Man is ignorant about his source. He does not know from where he has come, who is his creator and where shall he go? It is only the Guru or a realised man who guides the seeker to follow a right path for self realisaton. You can know your "Self", your origin and your purPose of coming to this world only in the company of the saints or the realised.

Whatever Counsel or advise a Guru gives to his disciple, that is known as NAM, but people do not act upon the advise of the Guru. They lay more stress upon the repetition of the spokenword, Pandit ji has come to me for initiation. For our return to our original abode our sages have given Gayatri Mantra or Paranayam Mantra to the Brahmans. Mantra, means, opinion, Cousel, advise or method. It is to behold the light beyond the three stages of awakening, dreaming and sound sleep. This light within is your real promptor or an inducer. But, these Brahmans do not behold the light within.

They simply mutter the mantra. The Paranayam Mantra also directs the initiate to traverse the inward path to this stage of light within us, Om Bhur; Bhuveh: Swah: Maha: Jana: Tapa: and Satyam. But nobody tries to behold the light within. They simply practise to behold their breath by closing their nose. Similarly the followers of Radhaswami faith have gone astray from the real path of truth. They have memorised "PANCH — NAM" (five names). They believe in muttering SEHASRAKAR, OMKAR RARANKAR, SOHAN- KAR, and SATYAKAR. They do not understand the significance of these words. Then what is NAM —DAN ?

Reform thy human life ;

thou, my friendly Surat

You have got this human body. Realise its importance and reform and improve your life. What is meant by reforming or improving your life ? It means that you should have happy life; you should have food to eat ; you should have clothes to wear, you should have a house to live in, you should have work to do and you should attain liberation from the cycle of transmigration. This is the real reformation of improvement of your life. Those who advise you to renounce this world, are not sane people. To live a happy life, it is essential that you should be self—sufficient, otherwise you cannot have physical and mental peace. You must have means to live a

habpy and blissful life and above all you should know the skill or the path of returning to your original abode is known as NAM. From NAM I have known the path of return to my original home and I have also known the purpose of my coming into this lifc. All of us come here to live happily and after living a joyful life we all are to return to our True-home. The object of life is Bliss, Joy and Peace.

Among the five names referred to above, the first namc is SAHASRAKAR. These are the teachings of the saints. In the Hindu scripturcs this centre of SAHASRAKAR is know as the centre of Light as "Bhoor-Bhuvh: Swah : Tatsavitur-Varanyam." What happens at this centre of SAHASRAKAR ? Light shines and the sound of conch and bell is heard there. The teachings of Radhaswami faith also refer to this very truth of this stage. By meditating at this centre our mind becomes still. By beholding the inner Light or by listening to the inner sound of this centre, your will power shall become strong and then every desire of yours shall get fulfilled. I again say that your own desire shall be fulfilled. The Brahmins of the past used to accomplish the Gayatri Mantra in its true sense. It was due to this fact that they could get anything of their choice even in the Jungles. Perhaps you know, that when Bharat along with his huge army went to see Lord Rama in the

Jungles, revered sage Bhardwaj with the power of his thought served food to the entire army of Bharat. This NAM is of the first stage.

I do not impart NAM. I do not make any one as my disciple. In 1942 A.D. an event took place in my life. A lady from Jabalpur with her three children and her husband came to me at Ferozepur Via Hoshiarpur. She used to meditate at the centre of Light within and see my form in a red colour sun She also used to listen the word "CM" or the sound of Mridang within. She came to me and pleaded, "Maharaj ji, please ask my husband to take care of these children. They disturb me and do not let me sit for meditation regularly." I enquired if she had her own mother. She again replied in negative. Her husband was employed in telegraph department and as such he used to remain away on his duty from 8 A.M. to 8 P.M. I have experienced that he or she who meditates at the second stage within, his or her desire mnst be fulfilled. This is the fruit of remembering NAM. He who repeats NAM regularly, his wishes are granted. On the basis of my experiences and observations, I told Sh. Wali Ram Hakim that as this lady meditates at the second stage, her all the three childrdn would die. This was my observation about that lady at that time. While leaving, that lady touched my feet and I said

to her, "Whatever you have begged from Data Dayal Ji Maharaj, you shall get." Within a period of nine months, her all the three children passed away. At this incident I felt awakened and I cautioned myself saying, "Faqir Chand, if you would continue to impart NAM to one and all, they would meditate and their inner desires, good or bad, would be fulfilled. So by imparting NAM you will be committing the greatest sin." Thus I realized that, "NAM should be imparted to those only who deserve it. After this incident I have not imparted NAM to anyone and also I did not disclose this fact to anyone. Because in Radhaswami faith, or in the path of saints a thought is given that more the individuals you get initiated, the more you shall be benifitted. To take people to a particular guru and get them initiated is considered as the most virtuous deed. I do not comment upon this practice. I deliver discourses and tell the art of living a happy life. The basic need is to make one's thought pure and desires chaste. To keep mind and thought pure, I tell some methods and techniques, but I do not import NAM.

About seven years ago I went to Agra. From there I brought the sacred book entitled "PREM-Bani" written by His Holiness Hazur Maharaj Rai Salig Ram Sahib, the Sat Guru of Hazur Data Dayal Ji Maharaj. In this sacred text, His Holiness has

very clearly written, that those who have impure minds ; those who cherish enmity, jealousy and hatred in their minds, those who do not want to put a check upon their destructive and bad thinking and those who are unable to have control upon their wrong thinking, should not at any cost undertake this practice of Surat-Sabca-Yoga. If they do this practice, they shall suffer heavily. The Hindu scriptures also refer to the same truth, that if a Shudra happens to listen the Gayatri Mantra, put a block in his ears, so that he may not be able to listen again. Shudra is not one, who is born in the family of a Shudra untouchable), but Shudra is he, whose mind is not pure and who nourishes hatred, enmity and Jealousy in his mind. I dare say that those who are imparting "NAM" to thousands of people at different centres, they infact are not doing good to the ignorant people. NAM should be imparted to those only who are fit for it. The primary thing is Sat-Sang. Sat Sang makes the seeker fit for initiation. So, it is essential that an individual should be given Sat Sang till he becomes capable of understanding the Truth. Perhaps this Pandit Ji has some relation with me from the past life. Otherwise I do not impart NAM to anybody. I give Sat-Sang and those who understand my word and act upon it, that is NAM for them. I do not have any desire to become Guru and make disciples.

I am explaining the first stage or centre of SAHASRAKAR. He who meditates at this center, his wishes are fulfilled. At this centre every meditator enjoys the sight of Light. There are very few seekers who feel the necessity of going beyond this centre and they do reach the higher stages. In the ancient times the Guru used to initiate his disciple to the first stage and the disciple used to make himself perfect in meditation at that stage. There after Guru used to see the inward progress of his disciple, and if satisfied with the progress of the disciples and himself convinced about the necessity of higher initiation for the disciple, he used to reveal the secret of higher stage and tell him the method of meditation at that stage. But at present the entire course of inward practice from A to Z is revealed in the very first sitting. And the result is that neither their disciples understand anything about SAHASRAKAR, ONKAR, SOHANKAR and SATYAKAR nor do they ever succeed to reach these centres. Not only the Gurus have adopted another method of exploiting the ignorant masses, they also tell their disciples that they may follow the path of inward practice or may not, Sat Guru shall surely come to liberate them at the time of their death. The poor disciple, with such an assurance from their preceptors, neither makes any improvement in his life, nor he undertakes

the inward path.

"Rolling stone gathers no mass."

Such a state of affairs has moved me and I am obliged to carry on the dictates of His Holiness Hazur Data Dayal Ji Maharaj and thus I speak the truth, so that I may free myself from the debt of my Guru. I dare say that, we Gurus and Mahatmas have befooled you. I emphatically say that inward practice is most essential for you. You can cover the inner stages only by inward practice. When you complete inward practice of all the stages, you shall automatically become free from all the wordly desires. This world will remain as it is. You go on with your regular inward practice. After completing the practice of first two stages, you are to meditate at the third stage which is known as Trikuti. What happens by meditating at Trikuti? The meditation of this centre would help you to know or have the knowledge of anything that you wish to know. Keep the image of your Ideal in your forehead and meditate upon this holy form. This practice would help you to attain knowledge. All the scientists are the meditators on this very centre. This stage of Trikuti is known as the centre of OM, which means creation, sustenance and destruction—one thought oozes, it then sustains for sometime and vanishes thereafter. This is the centre of Trikuti. Those who meditate at this centre

PURNADAYAL
RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY

for the attainment of Divine Knowledge, they attain it and those who meditate here for worldly knowledge they attain worldly knowledge. Our sages and saints of the past wrote the great volumes of Vedas from thi very centre. The knowledge of music is also the creation of this very centre. In a nut-shell it may be said that the entire knowledge of science, music, religious scriptures and the worldly knowledge is the creation of this centre of Trikuti. He who wants to attain the knowledge of a particular thing, he should make an ideal of his desired thing and then meditate upon it on this centre of Trikuti His regular meditation and Sumiran of that particular thing would fulfil his desire and he would become Perfect in it.

I myself follow this practice. It is due to this fact that I speak always a new thing. Why ? Because, I have an object of knowing the Reality or Truth. As and when I dwell at this centre of Trikuti, I give a new thought to the world. This stage of Trikuti is the centre of OMKAR and this "OMKAR" or Brahma is the creator of this world. By dwelling at this centre of Trikuti and with the help of "OM" (Brahma) you can attain the spiritual knowledge. "OM" has got a most sublime and significant place in the Hindu scriptures. All Holly Mantras start with OM, e.g. OM BHOO, OM BHUVAH, OM SWAH, OM JANA, OM MAHA, OM TAPA and

OM SATYAM. This is the key to your upward journey. This is the gate to the sublime knowledge. Among Muslims this stage is known as "AREFAN" This very centre of Trikuti or "OM" is the source of worldly as well as spiritual knowledge. When you feel tired from your worldly pursuits of life, you desire for rest. Similarly, when a seeker feels tired from a regularly meditation at this centre of Trikuti, he yearns for something more. Thereafter come the stages of Sunna and Mahasunna is Savikalapa Samadhi Nirvikalapa Samadhi. This state of trance is known as "SARANG" or "RARANG—SARANG". Hindu scriptures refer to this stage as the stage of "SHUDHA—BRAHMAN". Here at this centre the creative energy becomes completely pure. All its impurities vanish away at this centre. So when your mind becomes pure at this centre, you attain peace. This is the third stage, where you enter a state of Trance. You lose consciousness of your mind and your intellect does not work here. Generally the meditators do not like this stage because, this is a state of inertness. Then comes the fourth stage the stage of "SOHANKAR". At this stage your mind gets still. Your soul remains alone here and it realises itself at this stage. So when "Self" is realised, it does not fall in the domain of mind. When your "Self" succeeds to realise itself, it does not come under the sway of mind usually.

Beyond this stage comes the state of "SATYAKAR," where your soul or Self merges with the Supreme-Self and then loses its own entity. These are the five NAMES or the stages.

These five stages or Names are also referred to in Hindu scriptures. But there they are known with different names as:—"ANNAMAY KOSH," "PRANMAY KOSH", "MANOMAY-KOSH," "VIGYANMAYKOSH," and ANAND-MAYKOSH." Beyond these five stages is our Origin, from where we have come down to this world. So, Guru's duty is to lead the disciple through all these stages to the highest realm of our origin. His Holiness Hazur Data Dayal Ji was kind enough to lead me out of these stages. I was very much lost in the inner visions and colours. For me, the vision of Hazur Data Dayal Ji was the truth. For me, this was the ultimate aim of life. But His Holiness Hazur Data Dayal Ji assigned me this duty, so that I may understand the faculties of my mind and realize the **Truth. Now, I have** understood my mind. I am **forced to go beyond the** realm of my mind to the state beyond "SATYAKAR" or "SATPAD" which state is my original Abode.

I am giving this Sat Sang to Pandit Ji so that he may realise the Reality of NAM and know the destination where he is to go. The saints revealed

to me the place, from where I have come to this world. I have come from that Supermost Element, which neither takes birth nor dies. He is Primordial, Eternal and Everlasting. But how would you release it ? You would realise it through a regular inward practice. My observations and experiences of Sat-Sangies have revealed to me that my "SELF" is Primordial, Eternal and Immortal. "SELF" never dies. Death occurs to body, mind and the Light. Death is not for "ME." I am the Divine-Self. The word "I" is being used to convey the sense through conversation. Because while talking to or conversing with you, one has to use the ward "I" and "you", otherwise at that sublime stage neither there is "I"' nor there is "you". This is the greatness of NAM. It is only NAM which makes you realise this truth. We do not know ourselves. My research coincides with the research of our saints, so I am convinced of the truth as I am convinced by my relatives and my surroundings that I am son of Sh. Mast Ram Ji, though I do not have any proof in this regard. Similarly, this Sat Sang and inward practice convinces you about your NAM which is primordial, Eternal and Immortal.

He who attains NAM lives a happy and carefree life. He who repeats NAM, his mind gets purified and he attains quietitude.

———

BEYOND SECTARIANISM

by

H. H. Hazur Manav Dayal
Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

(In Continuation of the Last Issue)

We might also suggest that there is a difference between a religious quest and a philosophical quest and that the settling of one of them is not necessarily the settling of the other. The religious quest is characterized by an intense desire to know God. It is illustrated by the statement of Job "Oh, that I knew where I might find him, that I might come before his presence." It is a dominant theme in Hinduism and Sufism and is also found in all the major religious traditions. For some people it is a desire to experience God directly, to see him "face to face." For others, it is a desire only to become convinced that he exists. That alone is enough. Not everyone has it and it seems to vary in its intensity from person to person. Marx and Freud did not think very highly of it. Marx saw it as a waste of human energy that could better be spent in more practical political endeavors. Freud saw it as an illusion, or more accurately, as a delusion. Some

people find God exceedingly difficult to find and spend most of their lives in search of Him, while others find Him rather easily and quickly, even in childhood, as Samuel did. Some attach a desire to serve God to the quest, while others see it as an end in itself. A great host of religious people have written about their experience of finding God and there is a very high level of similarity in what they report. In virtually every case they indicate the settling of their religious quest. "The mind rests," as Plotinus puts it.

The philosophical quest differs from the religious quest in that it is not so much a desire to have an experience with God as it is to know truth. Some apparently do not even try to know it, either because they do not trust their own ability to know it or, like Pilate, do not believe it is capable of being known. Others seem to want only enough of it to get by and are only interesed in "working truths," or that which can serve as the truth whether it is true or not. A large number of people are willing to settle for a small number of truths. For them a few good truths will do. They may be labeled "intellectual primitives." Some among us seem to have an insatiable desire to learn more truths. They never complete their education and are ever eager to learn something new, some even on their deathbed. A

few seem to be basically suspicious that any truth they may know may not be adequate and never quite settle on anything, taking the position that if they cannot know all of the truth they will not settle for any of it at all.

The philosophical quest is at least the desire to know the truth, or some truths, but it is also considerably more than this. It is the desire to know how truth is unified. It is knowing truths in system —not only knowing what propositions are true, but also what organizational principle may be utilized to tie them all together to form some coherent intellectual system. This is the case in the unification of any one science or intellectual discipline. One could hardly have a real sense of any discipline without knowing more than a large number of the truths of discipline. One must also know its higher truths, the more general truths that may be abstracted or synthesized from its general body of truths. The philosophical quest is the desire to discover a meaningful way of connecting all the truths of mathematics science, art, religion, literature, and common sense together into some unified intellectual pattern. It is a search for some central idea or concept under which they all may be subsumed or for some method or organizational principle that will bring them all into focus. Just as in the case of the religious quest,

some men spend their entire lives looking for a new philosophy, while others seem to be perfectly content to settle for one of the old well-used and durable varieties. It is difficult to prescribe for someone else what is necessary for the settling of his philosophical quest for it is difficult to predict what concept, method, or proposition he might be able to see as a unifying factor. The fact remains that a large number of people do have a religious quest and spend a great part of their time in life dealing with it and a large number of people have a philosophical quest and do the same for it. Some people have both. Some have one but not the other. A few people apparently have neither.

We might also suggest that there is sometimes a connection between the settling of a religious quest and the settling of a philosophical quest and this, we think, provides the clue to the making of both the sectarian and the sectarianist. The settiing of a religious quest is a religious and not a philosophic issue. It is still a religious settling of a religious issue even though it may have some philosophical factors involved in it. It may be also accompanied by a settling of a philosophical quest or a simple abandonment of the philosophical quest. Those persons who have achieved a settling of thetr religious quest are aiways very happy in their newly-found

religious meaning. They claim to be at peace with God and to have attained a peace of mind. This may be because of the joy of discovery of something of great worth, as in discovering a pearl that is purer than all other pearls, or it may be relief at not having to worry about philosophical issues any more—a retirement from philosophy. (It could, of course, be both). Almost everyone who pursues the philosophical quest grows rather weary of it sooner or later and it is tempted to abandon it altogether, just as Job was tempted to curse God and die. The philosophical quest is......meaningful philosophical position or orientation is arrived at or when a decision is made to cease all further philosophical activity. When a meaningful position is arrived at it may be one that the person himself succeeded in devising or it may be one formulated by someone else, eves ages ago, that the quester decides to accept. In either case, the settling of a philosophical quest is then a philosophical issue.

The religious sectarian by definition is more than one who has settled his religious quest. He is more than one who has "found God" and has had a religious experience. This he may have done, but his main activity is his wedding of some particular philosophical formulation with his new religious profession. In short, a religious sectarian is one who succeeds not only in settling his religious quest, but

satsangs for the benefit of the readers of the Manav Mandir. May be that next time I will carry a mini tape recorder with me for this purpose. Even though my stay in Green Bay was for a short time, yet some satsangees did come to see me at Ajit Kumar's residence.

On August 31, I flew to Sanfrancisco from Chicago at 11 A.M. by Delta Air Lines. Mr. Romesh Goyal and Mr. Gurucharan Singh of Chicago came to see me at the airport. I was received by Pamas Bhatti, Mr. John Redon and his wife Marion. John and Marion had come from Oregon from a distance of five hundred miles to meet me. We first went to Mr. Sondhu's house in Sanfrancisco where a satsang had been organized. After that we proceeded to sacramento to stay at the house of Mr. Bhatti. Mr. Bhatti's mother, who had come from India, was also with us. Mr. Bhatti's wife susan had been blessed with a son recently. They already have a two and half years old daughter.

Mr. Mike Mohoric, one of my dearest young friends, most sensitive to spiritual experiences, came from Reno, Nevada next morning to join us at a lunch at Mr. Bhatti's residence. His visit was most significant. because his inquisitive questioning led to a very interesting satsang and also his love and radiance filled the house of Mr. Bhatti with a special

joy. I sincerely wish Mike and his fiance Shiela health, harmony, happiness and holiness. After the lunch Mike left for Reno and Mr. Bhatti proceeded with me to San Jose, California to the house of Mr. Vinod Sharma and his wife Kusum. Their daughter Monica is a wonderful and intelligent young devotee.

After lunch and short rest we proceeded to the house of Sudhir Bhatnagar, where a satsang had been organized that day. I forgot to mension that Mr. John Redon and his wife had stayed with Mr. Vinod Sharma and his wife overnight when I was in Sacramento. They enjoyed their story immensely and praised the hospitality of Sharma family.

Perhaps I have already told you that Mr. Sudhir Bhatnagar, who is the son of our most beloved senior satsangi Mr. B. B. Bhatnagar of Amritsar, is an engineer in a very big corporation. The engineers in U.S.A., and other developed countries are not administrators only who deal with the files in the office. Even the chief engineer has to work like a mechanic on the machine. This is not the case with our engineers and technologists in India. The reason is we have inherited bureaucracy and red tapism from our ersthile British rulers. After attaining indepen-dence our administrative set up and bureaucracy has become even more heavy. As a result of this the

sense of service to the public among the bureaucrats is at very low ebb. I hope that this attitude of our administrators and the political leaders soon undergoes a change. Our culture and philosophy lays emphasis on Karma Yoga i.e., the union of man with God by engaging oneself in one's duty and activity. Yoga as the fixity of mind is of two types : one is Samkhya Yoga or the Yoga of knowledge and the other is Karma Yoga. A person who follows Samkhya Yoga withdraws from worldly attachment by freeing himself from desires. This is a gradual process of eliminating all motives and detaching the mind from all impressions and suggestions. This is the Yoga of extricating oneself from physical engagements and attachments. One among millions may be successful in attaining the highest level of meditation by adopting this method of Yoga. The other approach of the Karma Yoga is positive. It does not require a person to withdraw from the active life. This consists in the engagement in one's professional domain to the extent of being detached to all other activities than the efficient performance of one's duty. Lord Krishna told Arjuna in the Bhagavadgita that Yoga consists in efficient performance of one's duty in one's profession or occupation. So all of you, who are engaged in your profession wholeheartedly, like Mr. Sudhir Bhatnagar, need not

worry about spending long hours in meditation. The habit of the fixity of mind will certainly help you in your inner meditation gradually.

The religion of saints or Radhaswami puts the same truth in a different manner. I will refer to that notion of the elimination of the soul from the Karmas in my next monthly message. By the way my dearest ownselves, let me tell you that I have dealt with one aspect of the nature of Karma from the point of view of the Radhaswami faith by commenting on the duty of engineers above.

I was telling you that we had a satsang at the residence of Mr. Sudhir Bhatnagar at San Jose. Besides a few Indian satsangees John Redon and his wife also participated. I had already told you that this lovely couple left for Los Angeles soon after the satsang, because they wanted to be with me in California, as long as I stayed in that area. This shows their keen desire to benifit from the satsangs as much as they can. I flew to Los Angeles early in the morning next day. This much information about my foreign tour seems to be sufficient for this monthly message.

With these words I wish you all a happy

harmonious, healthy and prosperous new year. My best wishes and blessings for this month flow out from my heart and I sincerely desire that you should be able to integrate and balance your secular and spiritual life.

Radhaswami to you all.

Yours in Faqir
Manav.

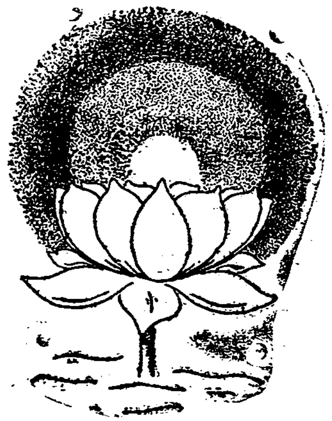

The Ultimate Aim of Life

It is a rare good luck to be born a man. One gets it after wandering through innumerable forms of life, high and low. If one wishes that such a rare gift as human life should be attended with good results, i.e. one's salvation or liberation and redemption from recurrent births and deaths be achieved by getting admittance into the Permanent Abode, while in this body, one should BE MAN ENTIRE, WHOLE AND IN EVERY THING, by joining the path of the saints (SANTMAT) and practicing the Yoga of Light and Sound (Surat-Shabda-Yoga) with Love and Yarning. By so doing one will surely be saved from the vicious circle of Eighty four, and will, one day, reach the Original Home and will be one with the Supreme Being.

SANT TOUR PROGRAMME

	Morning	Evening
0	Arrival to Hanamkonda by A. P. Express	
90	Satsang	Satsang
.990	Satsang	Satsang
2nd Feb. 1990	Arrival to Karimnagar (Via Hazurabad)	Satsang
3rd Feb. 1990	Arrival to Hyderabad	Satsang Vaidik Dharam Prakashak H. School
	Satsang	Shalibanda.
4th Feb. 1990	Andhra Saraswati Parishath Tilak Road, Boggulakinta, Abids.	Satsang Kabeer Dera, Goshamahal.
5th Feb. 1990	Jain Mandir (Hall) Ranigunj, Sec'bad.	Anjaiah Auditorium Masab Tank Chintal Basti Shyamnagar,
6th Feb. 1990	Hari Bhavan Kalikaban (Charkaman)	Arrival to Nizamabad
7th Feb. 1990	Satsang (Nizamabad)	Satsang (Armur) Laxmi Narayan Temple (J. Thukaram) H. No. 1—12—5, Armur.
8th Feb. 1990	Arrival to Aheri	
9th Feb. 1990	Satsang	Satsang
10th Feb. 1990	Satsang	Satsang
11th Feb. 1990	Arrival to Nagpur	Sri R. D. Kothari 82, Canal Road, Ramdas Path, Nagpur.
12th Feb. 1990	Satsang	
13th Feb. 1990	Arrival to Etava Tavana (M.P.)	

For extra information contact to Bhagwan Vyas Secretary
Roop Chand Dewda President
Phone Nos. 557235 25569
551861 44143
15—8—421, Feelkhana,
Hyderabad — 500 012.

Secretary

राधास्वामी नाम-ध्वनि

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
अलख अगम और अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
परम, सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
बन कर आये परम [illegible], हरते सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि, नमामि।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
दाता दयाल के प्यारे तुम मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

6265/74 JANUARY 10th

MANDIR NWHS

19 11 90 503310

भारत INDIA

Address

H/E

4/5 Preside t Radha Swami
Sat Sang Bhaw... Pitlam
Nizamsagar Distt. Nizamabad A.P.

From : Phone : 2...

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR - 146 001

Shiv Dev Rao Press, Manavta Mandir, Hoshiarpur

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL